उसकी कहानी

लेखक

विनोदशङ्कर व्यास

प्रकाशक

पुस्तक मन्दिर

काशी

उसकी कहानी

यह कहानी सुनाने के पाँच महीने बाद, वह एक दिन वेश्याओं के मकानों मे आग लगाते हुए, पकड़ा गया। इसके बाद वह पागल-खाने भेज दिया गया।

मैं आवारा हूँ, बदनाम हूँ, दुनिया की नजरों से गिरा हुआ हूँ। मेरी यह कहानी सुन कर लोग हँसेगे, तरस खायगे, क्या-कहेगे ?—नहीं जानता। प्रति दिन प्रातःकाल बिस्तरे से उठ कर पास मे पड़े एक शीशे के टुकड़े में अपना मुँह देखते हुए, सोचता हूँ—२४ घण्टे का एक छोटा-सा जीवन समाप्त हुआ। इसी तरह कितने जीवन नष्ट-भ्रष्ट होकर तीन युगों की समाधि बना चुके हैं।

उस घटना की गोद में सोलह वर्ष चले गये। फिर भी कल की बात मालूम पड़ती है। उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष की थी। जैसे नवयुवकों की प्रेम-कहानियाँ अपने पड़ोस और आस-पास के मकानों से आरम्भ होती हैं, ठीक उसी तरह मेरी कहानी की भी घटना है।

मैं भोजन करके उठा था। जाड़े के दिनों में धूप कितनी प्यारी लगती है। मैं छत पर बैठा था। सामने वाले मकान के मुडेरे पर एक बन्दर हाथ मे शीशा लिये अपना मुँह देख रहा था। उसको घुमाता-फिराता हुआ, वह तरह-तरह से अपना खेल दिखला रहा था। मैं बडे कूतूहल से देख रहा था। उसी समय उमा हाथ मे एक डण्डा लिए छत पर चढ़ी।

बन्दर को डरा कर वह शीशा छीन लेना चाहती थी। लेकिन उसे देखते ही वह दूसरे मकान पर कूद पड़ा। निराश होकर वह एक टक उसकी ओर देख रही थी।

मैं कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया। बन्दर मेरे मकान पर आ गया था। मैं सहसा उसकी ओर बढ़ा। उसने शीशा छोड़ दिया, वह मेरी ही छत पर गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो गया। उसका एक टुकड़ा उठाकर मैं अपना मुँह देखने लगा।

उमा हँसती हुई चली गई।

उस दिन से जब उमा मुझे देखती मुस्करा देती। इसके पहले अनेकों बार मैंने उसे देखा था, लेकिन यह देखना कोई देखना न था।

स्नान करने के बाद जब मैं ऊपर छत पर अपने बालों को कंघी से सँवारता तो कभी सामने उमा को देखकर, शीशे को सूर्य की प्रखर किरणों के साथ, इस तरह नचाता जिसमे उसका अक्स उमा के सम्मुख दौड़ता रहे।

उसकी आँखें झलमला उठतीं। में अपनी जवानी की नासमझी का आनन्द लेता।

इसी तरह घनिष्ठता बढ़ती गई।

एक-एक दिन गिन कर एक वर्ष समाप्त हुआ।

पहले संकेतों का निर्माण हुआ। फिर पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ। अन्त मे उमा निस्संकोच मेरे सम्मुख आकर खड़ी हो गई, जैसे वह सम्पूर्ण भय और लज्जा की आहुति दे चुकी हो।

इतने दिनों से प्रति क्षण जिस मूर्ति की आराधना में मैं तन्मय था, उसे एकाएक अर्धरात्रि के समय अपने कमरे में, अपने सामने खड़ा देख कर मैं निर्जीव-सा क्यों हो गया?

उसने कहा—आज बड़ी कठिनाई से भाग सकी हूँ। फिर भी वह बूढ़ी मजदूरिन एक बार जग उठी थी। घर भर सो रहा है। अब विलम्ब न करो।

मैंने कहा—इतनी हड़बड़ी में भाग कर कहाँ चलेंगे?

उसने कहा—सीधे स्टेशन ! जहाँ की गाड़ी मिल जायगी, वहीं चले जायँगे ।

मैं उसकी ओर भयभीत होकर देख रहा था । मैंने अपने साहस को एक बार सचेत करते हुए कहा—अच्छी बात है, चलो, मैं कुछ रुपये और अपने कपड़े ले लूँ ।

वह बैठ गई थी । मैं पिता जी का बक्स खोल कर रुपये निकालने के लिए ऊपर गया ।

मैं बक्स खोल ही रहा था कि नीचे कोलाहल हुआ । घबड़ा कर बक्स बन्द कर दिया । पिताजी की आँखें खुल गईं ।

उन्होंने पूछा—कौन ?

मैं चुप था ।

वे मेरी ओर देखते हुए बोले—अरे विजय ! तू इतनी रात को यहाँ क्या कर रहा है ?

मैं कुछ भी न बोला ।

वह पलंग से उठ पड़े । मुझे दोनों हाथों से दबा कर उन्होंने फिर पूछा—बोलता क्यों नहीं ?

इतने में कोलाहल बढ़ा । कोई कह रहा था—दुष्टा यहाँ पकड़ी गई ।

मैं पिताजी से हाथ छुड़ा कर भागा । नीचे आकर भयानक दृश्य दिखलाई पड़ा ।

पड़ोस के लोग उमा का हाथ पकड़े हैं । सब की आँखें चढ़ी हुई हैं ।

मैं घर से बाहर निकल पड़ा । दौड़ता हुआ सड़क पर आया । एक ताँगे पर बैठ कर स्टेशन पहुँचा ।

गाड़ी पर बैठने के बाद, जब स्वस्थ हुआ, तो यही सोचता रहा कि मैं अकेला ही जा रहा हूँ, बेचारी उमा साथ न आ सकी ।

२

घर से भागने पर कई महीने कलकत्ते में बीत चुके थे। तब से उमा का कोई समाचार नहीं मिला। दिन-रात उसी की चिन्ता रहती।

मैं कितना बड़ा अपराधी हूँ। एक नवयुवती के जीवन को कलंकित करके इस तरह उसे छोड़ भागना उचित था ?

इसी तरह के पचासों प्रश्न उठते रहते, किन्तु मैं विवश था। मैं क्या करता ?

इतने बड़े नगर में इतने दिनों तक भूलता भटकता किसी तरह जीवन निर्वाह करता रहा। मानसिक और आर्थिक कष्टों के कारण बहुत दुबला हो गया था। अन्त में एक दिन, व्यग्र होकर मैंने पिताजी के नाम एक पत्र लिखा—उसमें मैंने अपने अपराधों पर दुःख प्रकट किया था और अपनी माँ का समाचार पूछा था।

पिता जी की कठोरता से मैं परिचित था, किन्तु माँ अवश्य बुलायेगी, ऐसा मुझे विश्वास था।

दो सप्ताह के बाद उत्तर मिला—

मैं तुम्हारे जैसे आवारे लड़के का मुँह नहीं देखना चाहता। तुम्हें हम लोगों के समाचार की क्या आवश्यकता है ?

पत्र पढ कर एक बार बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। अपने उपर घृणा हुई। अब कोई मार्ग न था।

मैं अपने दुर्भाग्य पर हँस पड़ा। आह ! इतनी अशान्ति क्यों ? मनुष्य-जीवन पाकर इतनी निराशा क्यों ?

उस दिन न जाने किस अज्ञात शक्ति ने मन में एक नवीन बल भर दिया। मैंने सोचा—पवन की भाँति मैं अब स्वच्छन्द हूँ और जंगली पशु के समान स्वतंत्र हूँ। मुझे कुछ न चाहिए। मैं अकेला हूँ। मगर उमा का क्या हुआ ?

एक दिन हवड़ा के पुल पर खडा मैं मन बहला रहा था। मुझे पहचान कर एक आदमी मेरी बगल में खड़ा हो गया। मैं भी पहचान गया। वह मेरा पड़ोसी था। उसकी पान की दूकान थी।

मैंने पूछा—क्यों? यहाँ कैसे आये?

उसने कहा—कुछ पैसा कमाने के लिए आया हूँ, भैया!

इसके बाद मैंने घर का समाचार पूछा।

उसने कहा—सब ठीक है।

फिर साहस करके मैंने उससे उमा का हाल भी पूछा।

उसने बड़ी गभीरता से मेरी ओर देखते हुए कहा—वह तो किसी के साथ निकल गई। जहाँ विवाह ठीक हुआ था, वहाँ के लोग लड़की की बदनामी के कारण विवाह करने को तैयार नहीं हुए।

उसकी इतनी बातों से अधिक मैं सुनना भी नहीं चाहता था।

मैं यह कहते हुए हट गया—अच्छा फिर भेंट होगी।

वह चला गया। मैं एक बोझ से और हलका हुआ। मैंने मनही मन निश्चय कर लिया था कि चाहे जब भी हो उमा को न छोड़ूँगा।

लेकिन अब तो वह कल्पना भी निराधार हो गई। अनेकों तर्क-वितर्क आपस मे द्वन्द्व करते रहे—हो सकता है, परिस्थितियों के कारण बाध्य होकर उसे किसी के साथ निकल जाना पडा हो।

जो कुछ भी हो, मेरे रोम-रोम से चिनगारिया निकल रही थी। मैं तीन दिन तक जी खोल कर रोया। मेरी अभिलाषाओं की सम्पूर्ण विभूतियाँ ज्वालामुखी के विस्फोट में विलीन हो चुकी थी।

३

दो वर्ष बीते।

इतने दिनों तक मैंने अनुभव का वह मार्ग देखा, जिस पर मनुष्य जीवन पर्यन्त चलते-चलते थक कर भी अपना रास्ता पूरा नहीं कर

पाता। मैं दिन भर पैसे पैदा करता और रात को मदिरा से उन्मत्त होकर वेश्याओं के दरबार में सम्मिलित होता।

चिन्ता, दुख और मन की मलीनता, सब कुछ शराब की बोतलों से धो डालता था। उसी तरह जैसे धोबी कपड़ों को पीट-पीट कर सफेद बनाने की चेष्टा करता है।

धन के अभाव में जुआ भी खेलता था।

भयानक से भयानक कार्यों के लिये मैं सदैव प्रस्तुत रहता था। जीवन को सरस बनाने के लिये यह सब आवश्यक हो गया था।

उमा के बाद, किसी भले घर की स्त्री को कभी भूल कर भी देखना मेरी दृष्टि में सब से बड़ा अपराध है। मेरे इन दृढ़ विचारों ने अब मुझे शान्ति दी है।

वेश्याओं के यहाँ भी मनोरंजन में कितना निष्ठुर प्यार भरा रहता है, यह मैं भली भाँति समझने लगा था। इसी से किसी के यहाँ पालतू बन जाना मेरे लिए बड़ा कठिन था। आज यहाँ, कल वहाँ। यही क्रम चलता रहा।

उस दिन दफ्तर से सन्ध्या समय जब लौटा तो द्वार पर दरवान ने कहा—बाबू आपकी एक चिट्ठी कल डाकिया ने दी थी; लेकिन भेंट न होने से आपको न दे सका।

मैंने कहा—देखूँ।

मैं पत्र पढ़ने लगा। मेरी माँ ने किसी से लिखवाया था—तुम्हारे पिता जी बहुत बीमार हैं, पत्र देखते ही चले आओ। डरने की कोई बात नहीं है।

बहुत दिनों के बाद मैं घर पहुँचा। देखा, वास्तव में पिता जी रोग शय्या पर पडे थे। मैं उनका चरण मस्तक से लगाकर रोने लगा।

उनकी भी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी।

इतने में माँ आई, वह मुझे ऊपर ले गई। मेरे अपराध क्षमा की चादर मे ढाँक दिये गये।

कई दिनों तक तो सकोच और लज्जा के कारण मैं पडोसियों और इष्ट-मित्रों से मिल न सका। मगर कितने दिन इस तरह छिपा हुआ रहता?

किसी तरह मन को दृढ़ बना कर मिलना-जुलना आरम्भ किया। दो एक मित्रों से उमा का भी हाल सुना। एक ने तो व्यग्य मे यहाँ तक कह डाला—वाह यार! तुम्हारी प्रेयसी तो किसी दूसरे के हाथों जा टपकी और तुम यों ही टापते रह गये।

मैंने मौन होकर आँखे झुका लीं! चार वर्ष के भीतर मैं उमा को भूला बैठा था, लेकिन यहाँ आकर उसकी स्मृति जाग उठी थी।

मन की गति बड़ी चचल हो गई—मैं घृणा की भावना में डूब कर भी दर्द भरी आहों को क्यों बटोरता हूँ? उदास होकर भटकता रहता हूँ। कोई उत्साह न रहा। फिर क्या वेश्याओं के हाथों आत्म-समर्पण कर दूँ? यही ठीक है।

मेरे भविष्य के कार्यक्रम को सुन्दर बनाने के लिए, सौभाग्य से, पिता जी का देहान्त हो गया। सग्रहणी से वह बच न सके। वकालत में पचासों हजार की सम्पत्ति पैदा कर गये थे। सब मेरे हाथ लगी।

दो महीने तो मैंने सन्तोष के साथ व्यतीत किये। अन्त मे एक दिन खूब शराब पीकर नगर की वेश्याओं का अन्वेषण किया। उमर खैय्याम की रुबाइयों की तरह उनके अनेकों सस्करण देखे।

रात को दो बजे जब घर लौटा तो घण्टों पुकारने पर नौकर ने द्वार खोला। माँ जग उठी थीं।

उन्होंने क्रोध से पूछा—क्यों रे, इतनी रात तक कहाँ रहा?

मैंने कहा—माँ, मैंने शराब पी है। वेश्या के यहाँ गया था... हा...हा...हा तुम्हारा पुत्र कितना होनहार है! प्रसन्न हो जाओ—माँ!

माँ ने समझा मैं नशे में हूँ। वह चुप हो गईं, एक शब्द भी न बोलीं।

मैं अपने कमरे में जा कर सो गया। दूसरे दिन अपनी स्पष्टवादिता के प्रति मुझे प्रसन्नता हुई। मैं स्वच्छन्दता पूर्वक लोगों से स्पष्ट कहता हुआ, दुष्कर्मों की ओर बढा।

माँ मेरे प्रति उदासीन रहा करती थी। प्रायः कई दिनों पर बोलतीं। एक दिन भोजन करके जब मैं उठा तो बोलीं—विजय, तूने अपने बड़ों का खूब नाम रखा है। तेरे जैसी सन्तान भगवान किसी को न दे।

मैंने हँसते हुए कहा—माँ! इस जीवन मे भला-बुरा क्या है, इसका निर्णय मैं नहीं कर सका हूँ। पाप-पुण्य का क्या परिणाम होता है, कौन जानता है? सबको मरना होगा। यही एक सत्य है।

उनकी आँखों में आँसू उमड़ रहे थे। मैं वहाँ से हट गया।

माँ ने मेरे विवाह के लिए भी चेष्टा की। उन्होंने सोचा होगा कि विवाह के बाद सम्भवतः मैं सुधर जाऊँ और गृहस्थ बन जाऊँ, किन्तु मेरे जैसे प्रसिद्ध आवारे के साथ कौन अपनी लड़की का विवाह करता?

मैं भी व्यर्थ की झंझटों से बच गया।

४

पैसा भी कैसी सुन्दर चीज है!

संसार के समस्त वैभव और ऐश्वर्य इन्हीं पैसों के हाथ बिके हैं। जी खोल कर जो चाहे कर लें।

पिता के देहान्त के बाद पाँच वर्ष तक मैं सिर्फ इन पैसों का खेल देखता रहा। इसी बीच मे माँ भी चल बसी थीं। अब एक तिनके का भी सहारा न था। मित्र और परिचितों का वर्णन करना एक दम व्यर्थ मालूम पड़ता है, क्योंकि उन सभी झूठी सहानुभूति प्रकट करनेवालों को मैं चापलूस कुत्ते से अधिक महत्त्व नहीं देना चाहता।

जो कुछ भी हो—पैसे की झनकार पर नृत्य करने वाली सौन्दर्य की पुतलियों ने मेरे हृदय मे उत्साह का प्रवल प्रवाह बहा दिया है। मैं तन्मय होकर उनकी क्रीड़ा देखता हूँ। उनके माँ-बाप, भाई बच्चे सभी तृषित नयनों से उस चमाचम की प्रतीक्षा कर रहे हैं। फिर मैं किसके लिए, इन अपराधों के आविष्कारक कंचन को सम्हाल कर रखूँ? इसीलिए पैसों से ममता न बढ़ सकी।

इतने दिनों के बाद केवल एक मकान भर शेष बचा था। मैंने कभी इसका दुःख अनुभव नहीं किया कि मैंने पैसों को ठुकरा कर नासमझी की है। फिर यह मकान किसके लिए छोड़ूँ? उसे भी वेच कर शराब की बोतलों मे भरने लगा।

मेरी आयु ३६ वर्ष की सख्या गिन रही थी।

कभी कभी शराब पीकर मैं अकेला घूमने निकल जाता था। उस दिन पाँच मील के लगभग टहलता हुआ चला गया था। यह वही सड़क थी, जो पेशावर तक चली गई है। शेरशाह के बाद कितनी ही सल्तनतें इसकी धूल उडा चुकी हैं। मैं कहाँ तक जाऊँगा, यही सोचता हुआ सिगरेट निकाली। सलाई का बक्स जेब मे न था। मार्ग की दूकान पर रुका।

मैंने सलाई माँगी।

एक कान्तिहीन पुरुष बैठा था। उसके पास दो बच्चे सो रहे थे। और पास में ही बैठी वह स्त्री कपडा सी रही थी।

पुरुष ने कहा—सलाई दो।

केवल सलाई?—कहते कहते वह जैसे मुझे पहचानने लगी। भैरवी की तरह उसकी आकृति बन गई।

मेरा नशा उतर चुका था। मैंने भयभीत होकर देखा—आह, यह तो उमा खड़ी है। इतना परिवर्त्तन होने पर भी वह छिपी न रह सकी।

उसका रूप, स्वास्थ्य और आकृति, सब कुछ नष्ट हो चुका था। वह ठीक मुझे सड़क के किनारे गड़े हुए उस पत्थर की तरह मालूम पड़ी, जिसमें मीलों की संख्या के अक्षर अंकित रहते हैं, जिससे पथिक यह समझ ले कि कितना मार्ग वह समाप्त कर चुका।

आह, उमा—इतना मुँह से निकलते ही मैं दौड़ पड़ा। फिर मुड़ कर उसे देखने का साहस न हुआ।

५

उमा को देखकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया था। कोलाहल, चिन्ता और उदासी सभी ने न जाने कहाँ से एक साथ मिल कर आक्रमण किया था।

रात आधी बीत गई थी। मैं संगीत की स्वर लहरियों में उमा की छवि अन्धकार के आवरण में खोज रहा था।

गायिका गा रही थी—मो सम कौन कुटिल खल कामी...

उसके गाने पर मेरा ध्यान न था। मेरे सामने वही घटना थी—बन्दर शीशा लेकर भागा था। उमा छत पर खड़ी है। मैं शीशे के टुकड़े में अपना मुँह देख रहा हूँ।

मैं उठा। वेश्या आश्चर्य से देखने लगी। मैंने उसके कमरे में टँगे बड़े शीशे को तोड़ डाला।

वहाँ सब मेरी ओर क्रोध से देखते हुए कहने लगे—अरे, यह क्या किया?

मैं चुपचाप भागा।

अब यही सोचता हूँ कि उमा के यहां चल कर वह सलाई का बक्स ले आऊँ और आग लगा दूँ—इस समस्त विश्व में, लोग जलते रहें...हा...हा...हा...खूब जलें और इस सृष्टि का विध्वंस हो—हा—हा—हा—

कल्पनाओं का राजा

वह महीनों से अपने घर से बाहर नहीं निकला था। उसे किसी से मिलना, हँसना, बोलना कुछ भी पसन्द न था। पड़ोस के लोग उसके रहस्य-पूर्ण जीवन की बातें समझने में असमर्थ थे। उन्हे अनेक चेष्टाओं के बाद भी यह पता नही लगा कि वह कौन है? कहाँ से आया है? और क्या करता है?

उसकी दिनचर्य्या भी बडी विचित्र थी। वह दिन-भर सोता रहता। पता नहीं कितने दिनों से उसने प्रभात के समय उगते हुए सूर्य की बिखरी हुई किरणों को नहीं देखा था। वह पलग पर पडा झपकियाँ लेता, कभी उठ बैठता, फिर मुँह ढँककर पड़ा रहता। ऐसा ही उसका कार्यक्रम था।

उसके सम्बन्ध में लोगों ने बहुत तरह की बाते फैला रखी थीं। कोई कहता—वह किसी देश का राजकुमार है, जो अपने मन से भाग कर चला आया है। एक ने तो इस घटना का समर्थन यहाँ तक किया कि उसके राज्य के बडे-बड़े कमचारी उसे मनाने, समझाने के लिए आये थे, लेकिन उसने किसी की भी न सुनी—किसी की न मानी।

किन्तु, लोगों को यह विश्वास हो गया था कि किसी समय वह बड़ा धनवान् था और पैसों को लुटाने में उसने कभी हाथ नहीं खींचा लेकिन स्वार्थी पुरुषों की माया मे उसका सब कुछ चला गया। इसीलिए किसी से बोलना, मिलना, हा-हा करना उसे अच्छा नहीं लगता। वह अपनी ही धुन में मस्त रहता है।

जो कुछ भी हो, उसका चौडा मस्तक, लम्बी नाक और बड़ी-बड़ी आँखे अपनी विशेषताओं का स्वयं परिचय देती थीं।

उसकी कहानी

इधर तीन दिनों से भावों का वेग बड़ी तीव्र गति से उसके हृदय में उथल-पुथल मचा रहा था।

अगणित पगडण्डियों को पार करके थका हुआ पथिक जब विश्राम के लिए कहीं अलसाया हुआ सोचता है कि कितने बीहड़ मार्गों को कुचलता, ठुकराता हुआ, वह यहाँ तक पहुँच सका है। लेकिन अब वह कहाँ जायगा? क्या करेगा? यह समस्त जीवन यों ही भटकते ही बीत जायगा। वह आज इन्हीं प्रश्नों को न जाने किससे पूछना चाहता है।

देखो न, ऊपर आकाश अपने विशाल नेत्रों से दिन और रात जागकर, संसार की आहों को बटोरता है, और यह पृथ्वी असंख्य मानव, जड़, जीव जन्तु और कीड़े-पतङ्गों की जननी, कितनी उदारता से अपने वक्ष-स्थल पर सुलाये हुए प्यार की थपकियाँ देकर, जलाकर राख कर देती है। सिकता के एक कण में कितनी ईर्ष्या, कितना द्वेष, जलन, अभिमान, प्यास और न जाने क्या-क्या भरा रहता है। —कहते-कहते वह पलंग से उठकर कमरे में टहलने लगा।

जाड़े की रात साँय-साँय करती हुई, उत्तर देने की चेष्टा कर रही थी।

इस सम्पूर्ण सृष्टि का उद्देश्य, कौन बता सकता है? अवश्य ही निर्माता का खिलवाड़ है। खिलवाड़ में भी निष्ठुरता है, कठोरता है, ऊँह! कैसी विडम्बना है!—कहकर अपना मुँह बनाते हुए, कमरे में टँगे हुए, एक बड़े शीशे में अपनी तरह-तरह की आकृति बनाकर वह स्वयं अपने को देखने लगा।

पास में चमड़े का एक बक्स रखा था। उसमें शराब की एक बोतल पड़ी थी। इधर बहुत दिनों से उसने मदिरा नहीं पी थी, क्योंकि उससे भी एक तीव्र नशे की खुमारी में उसके दिन उलझे हुए थे।

आज बक्स से बोतल निकाल कर उसने अपने सामने रखी; जैसे किसी एक नवीन कल्पना का वास्तविक रूप देखने के लिए वह उठ खड़ा हुआ। उसने बोतल अपने बगल मे ली और चुपचाप घर से चलने के लिए प्रस्तुत हुआ। उसका बूढा सेवक द्वार पर ऊँघ रहा था। उसे देखकर खड़ा हो गया, बड़ी उत्सुकता से उसकी आँखें कुछ पूछना चाहती थीं।

काल्पनिक ने कहा—मैं जाता हूँ, रात में लौटकर नहीं आऊँगा।

सेवक ने मस्तक झुकाकर उसकी बाते सुनीं। वह उसके स्वभाव से परिचित था।

काल्पनिक को यह मालूम था कि नगर से दो मील दूर पर सुन्दर स्त्रियों का एक समुदाय है, जहाँ पुरुष अपने मनोरञ्जन के लिए उन्हे पैसों से पालते है, और वेश्या के नाम से उनका सम्बोधन करते हैं।

वह उसी मार्ग की ओर जा रहा था। रजनी ने दूसरे पहर में पदार्पण किया। कुत्ते भूँक रहे थे। चारों ओर सन्नाटा था। शीतकाल की रजनी अपने पहले पहर में ही गृहस्थ दूकानदारों को छुटकारा दे देती है। दुकाने सब बन्द हो गयी थीं।

वह चलते-चलते रूप के हाट में पहुँचा। इस भयानक शीत में भी पैसों के नाम पर हाट आलोकित था। काफी चहल-पहल थी। वह एक-एक मकान के सामने खड़ा होकर देखता हुआ, आगे बढा। किसी ने मुसकराकर उसे आकर्षित करना चाहा, किसी ने हाथ से सङ्केत किया और किसी ने रूमाल हिलाकर! इस तरह अनेकों विधियों से सबों ने अपना-अपना कौशल दिखलाया, लेकिन वह आगे ही बढ़ता गया। अन्त मे एक जगह जाकर वह खड़ा हो गया। उसे यह ज्ञात हो गया कि हाट की सीमा का यहीं अन्त होता है और यह अन्तिम मकान है। उसने ऊपर देखा, एक ढली हुई आकृति दिखलायी पड़ रही थी।

दोनों ने एक दूसरे को देखा। दोनों चुप थे। न कुछ प्रदर्शन था, न कोई सङ्केत! उसने सोचा यह अन्तिम है, इसके साथ ही यह हाट समाप्त होती है।

उसने मकान में प्रवेश किया। सीढ़ियों पर चढ़ते हुए, वह कमरे के सामने आ गया। वेश्या ने खड़े होकर उसका स्वागत किया। वह भीतर गया। एक मसनद के सहारे बैठ गया। सामने बोतल रख दी।

वेश्या की अवस्था ढल रही थी। उसकी आँखों के आसपास की लकीरें अपने बीते हुए दिन का परिचय दे रही थीं। आगन्तुक की ओर कुतूहल से वह देखने लगी। वह जैसे स्वप्न-लोक में चली गई हो।

युवक ने पहला प्रश्न पूछा—आप शराब पीती हैं?

'.........आप को सब तरह से प्रसन्न रखना ही मेरा कर्तव्य होगा।'

'हूँ......यदि इसके पहले कभी न पी हो, तो मेरा कोई विशेष आग्रह नहीं होगा।'

'जीवन में बहुत थोड़े ऐसे अवसर मुझे मिले हैं।'

'तब ठीक है, दो काँच के ग्लास मँगाओ।'

बोतल खोली गई। दोनों ग्लासों में उसने बराबर-बराबर उड़ेली।

युवक ने अपनी जेब से कुछ चाँदी के सिक्के निकाल कर उसके सामने रख दिये। उसने कहा—आप जो मेरे लिए समय नष्ट करेंगी उसका यह पुरस्कार है।

उसके इस उदारता पूर्ण व्यवहार के कारण उस वेश्या को सिक्कों के उठाने में सङ्कोच हो रहा था।

युवक ने ग्लास अपने हाथ से उठाकर उसे देते हुए कहा—हूँ!...

उसने ग्लास ले लिया। दोनों ने एक-साथ उठाया।

युवक एक साँस में ही सब पी गया। मदिरा के आवेश में उसे कुछ बोलने की इच्छा हुई। उसने कहा—मैं आज तुम्हे अपने जीवन की एक घटना सुनाऊँगा। सुनोगी?

वेश्या मुग्ध होकर उसकी ओर देख रही थी। मदिरा की एक घूँट ने उसे और समीप ला कर बैठा दिया।

युवक ने कहना आरम्भ किया—

अपनी जवानी के अल्हड़पन मे मैंने अपनी एक प्रेमिका बना ली थी। वह बड़ी सीधी, बडी कठोर और आकर्षक थी। वह पहली ही बार मुझे देखकर मेरे हाथों बिक गयी थी। मुझे एक बार देखकर उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता था। वह दिन-रात यही चाहती कि मैं उसकी आँखों से दूर न होऊँ। अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ लगाकर भी वह मुझे प्रसन्न करना चाहती थी। दिन-पर-दिन जाने लगे। जितना ही अधिक वह मुझे प्यार करती, मैं उससे दूर रहने की चेष्टा करने लगा। मैं उसके लिए अमृत था, लेकिन वह मुझे विष की प्याली के समान प्रतीत होने लगी। उसने मेरा सब कार्यक्रम बिगाड़ दिया। मैं प्रतिदिन सूर्योदय के पहले उठता था। मेरे कार्य और परिश्रम को देखकर लोग आश्चर्य करते थे। लेकिन वही एक कारण हुआ, जिसने दिन-रात मुझे सोना सिखलाया, उसने मुझे वेकर बनाया उसने मेरा शरीर दुर्बल बनाया, उसने मुझे घृणा सिखलायी और उसने ही मुझे शराब पीने के लिये बाध्य किया। मैं साहसी था, उसने मुझे कायर बनाया। ऐसी ही मेरी वह प्रेमिका थी।—इतना कहकर काल्पनिक ने बोतल से मदिरा दोनों गिलासों मे ढाली। वेश्या ने पीने में उसका साथ दिया।

वह उसी तरह कहता चला गया—मेरी अवस्था बढ़ने लगी। मेरा उत्साह शिथिल होने लगा। मेरा अब उसके प्रति आकर्षण कम

होता जा रहा था। मैंने एक दिन उससे कहा—मेरा तुम्हारा सम्बन्ध अब स्थायी नहीं रह सकेगा। तुम मुझे क्षमा करो।

उसने बड़ी दृढ़ता से कहा—तुम्हारे साथ ही मैं अपना प्राण दूँगी। मैं उसे भुलाकर शराब पीने लगा। एक दिन मैं आत्म-हत्या करने के लिए प्रस्तुत हुआ। मैं अपने जीवन से ऊब गया था। मेरे लिए ससार में कोई सुख नहीं था। मरना ही मेरा अन्तिम लक्ष्य था। मैं सब सामग्री लेकर बैठा था। मेरे द्वार पर किसी ने खटखटाया। मैंने पूछा—कौन है?

उसने कहा—मैं

मैं उसके स्वर को पहचान गया। मैंने कहा—क्या है?

उसने कहा—चलो।

मैंने कहा—कहाँ?

उसने कहा—मेरे साथ!

मैंने कहा—क्षमा करो, तुम्हारे ही कारण आज मैं अपने जीवन का अन्त कर दूँगा।

उसने कहा—यह तुम्हारा भ्रम है, बोतल लेकर चलो, शीघ्रता करो। उसके स्वर में शासन था। मैं कैसे अस्वीकार करता। तैयार हो गया। बोतल लेकर निकला...

इतना कहकर युवक ने फिर बोतल का शेष अंश दोनों पात्रों में भर दिया और पीने लगा। बोतल समाप्त हो गयी।

वेश्या ने नशे के आवेश में पूछा—तब क्या हुआ?

युवक ने कहा—बस, अब आगे न कहूँगा। मैं जाता हूँ।

वेश्या ने उन्मत्त स्वर में कहा—नहीं प्यारे, मैं तुम्हें न जाने दूँगी! अभी दो घड़ी रात बाकी है। इस समय तुम कहाँ जाओगे? मैं तुम्हें प्यार करूँगी।

युवक ने कहा—संसार में मनुष्य एक-दूसरे को भ्रम के आवरण में छिपा रखना चाहते हैं। कौन किसको प्यार करता है? यह सब व्यर्थ है। क्या तुम मेरी प्रेमिका से अधिक मुझे प्यार कर सकोगी?

वेश्या ने कहा—इस समय तुम्हारा जाना ठीक नहीं। मान जाओ।

युवक ने कहा—आज मेरी उसी प्रेमिका का अन्तिम संस्कार है, मुझे जाना ही होगा। कोई भी शक्ति मुझे रोक नहीं सकती।—कहते हुए वह उठ खड़ा हुआ और चला गया।

वेश्या सचमुच एक ऐसे स्वप्न से उठकर जगी थी, जिस स्वप्न में उसका सब-कुछ चला गया हो।

* * * *

दस वर्ष बीत गये।

वह वेश्या प्रति दिन उसकी प्रतिक्षा में अपनी आँखें बिछाये रहती थी। उसे विश्वास था कि किसी दिन फिर वह अपनी प्रेमिका से लड़-झगड़ कर उसके यहाँ अवश्य आवेगा। लेकिन फिर कभी वह लौटा नहीं।

आज भी वह अपनी सन्तानों के बीच में बैठकर अपने एक रात्रि के प्रेमी की कहानी, कल्पना से उसे और भी विशाल बनाकर कहती है।

वेश्या को यह नहीं मालूम हुआ कि उस अपरिचित युवक की प्रेमिका का नाम वासना था, और उससे लड़कर फिर कभी कोई कहीं नहीं जाता।

कलाकारों की समस्या

१—अरविन्द

उसकी बड़ी बड़ी आँखें और नाक विशेषताओं से सम्मेलन कराती थीं। आकाश की तरफ देखनेवाला और शून्य में अपनी कुटिया बनानेवाला कवि आज बीसवीं सदी के कोलाहल में अपनी वासनाओं के विशाल भवन में प्रलोभनों का द्वार खोले बैठा है। वह चाहता है कीर्ति, यश; दुनिया उसकी कविता को पढ़ कर उसके प्रति सम्मान प्रकट करे।

उसके मरने के पचास वर्ष बाद, मनुष्य की बुद्धि का निरन्तर-विकाश होते रहने पर, उसकी कविताओं के प्रकाश की ज्वाला आसमान तक ऊँची चली जायगी, और तब उसकी आत्मा उसी शून्य में लिपट कर उस ज्वाला से पूछेगी क्या उसी मनुष्य-समाज में अब दूसरी बार उत्पन्न होने का मुझे फिर निमंत्रण देने आई हो?

उसकी आत्मा कहेगी—मनुष्य, जीवित मनुष्य को समझने की चेष्टा नहीं करता। वह मृतक है, वह मरे हुए, लोगों से भय खाकर उनके प्रति सम्मान प्रकट करता है। मरने पर ही मेरा सम्मान है। अब मुझे जीवन नहीं चाहिए।

कभी कभी ऐसी बातों को सोचते रहने का अरविन्द का स्वभाव था। इन विचार-धाराओं से अलग होकर वह एक ऐसे संसार के सामने अपने को खड़ा देखता जो अपनी भौंह सिकोड़ते हुए व्यङ्ग्य कर रहा था। फिर भी वह भूखों मरकर अपने विश्वास की छाया में छुक-छिप कर वीणा बजा रहा था।

उदय ने एक पत्रिका के कुछ पृष्ठों को दिखाकर अरविन्द से कहा—तुम्हारी कविताओं की इसमें आलोचना है।

अरविन्द ने कहा—हूँ,……पढ़ ली है।

उसकी आँखों के सम्मुख वे पंक्तियाँ स्पष्ट हो गईं—छन्दोभङ्ग है। भाषा शिथिल है। व्याकरण की अशुद्धियाँ हैं। भावों में इतनी विलासिता भरी है कि उसकी छाया को छूकर ही मनुष्य अपना सर्वस्व खो बैठेगा। वास्तविक जगत की यथार्थ बातों का निचोड़ चाहिए। कवि की यह सब कल्पना व्यर्थ है। समय की गति मे बहो। तुम्हारी पतली-दुबली, गुलाब की पँखुरियों सी सुन्दर आराध्य देवी का वर्णन संसार इस समय नहीं चाहता। रोटी-दाल का प्रश्न है।

ऊँह—कहकर सदैव ही अरविन्द इस मार-मार, किटकिट से दूर रहता है। उसे कोई परवा नहीं थी। वह अपनी धुन मे गाता जाता है, उसकी कविता के स्वर समस्त वायुमंडल में गूँज उठते हैं।

एक बार प्रभात के बाल रवि से उसने अपने जीवन का मेल कराया था। उसमें तीव्रता नहीं थी, घधकती ज्वाला नहीं थी, और संसार को भस्म कर देने वाली आग नहीं थी, उसने कहा—ऊँचे उठो! आकाश का वह लम्बा-सा रास्ता दिन भर में समाप्त कर जाना होगा और तब तुम धुँधले से शिथिल कंकाल मालूम पड़ोगे—उठो!

अरविन्द की रचनाओं मे आकांक्षाओं के करुण रुदन की पुकार भरी हुई थी। एक दिन बरसाती नदी के समान अपने हृदय में, लहरियों के साथ कल्लोल करते हुए, उसने एक छवि देखी थी। ऋतुओं के आने-जानेवाले दिन, उसकी स्मृति-रक्षा में अब तक अपनी पवित्र ग्रन्थियाँ बाँधे हुए थे। आज भी एकान्त में चुपचाप बैठ कर न जाने कैसी आकृति बना कर, वह क्या क्या सोचता रहता है। उसके होंठ काँपने लगते हैं। उसकी आँखें स्थिर हो जाती हैं। तब वह कुछ शब्दों को अपनी लेखनी से दौड़ाता रहता है।

लोग यह भी कहते हैं कि उसकी कवितायें अमर हैं—साहित्य की स्थायी-सम्पत्ति हैं। लेकिन वह इन सब विशेषताओं को नचाता हुआ हाहाकार करता है। अभाव के पंजे में जकड़ा रहता है।

ऐसा ही नवीन युग का कवि यह अरविन्द है

२—चन्द्रनाथ

अस्ताचल पर डूबती हुई सन्ध्या के हृदय की रङ्गीन स्याही को भावनाओं की प्याली में भरकर चन्द्रनाथ चित्र अङ्कित करता था। वह चित्रकार था।

अपनी शक्तियों को उसकाने के लिए, उसे कभी-कभी शराब, सङ्गीत और मोटर की आवश्यकता पड़ जाती थी। स्त्रियों की ओर उसका विशेष झुकाव नही था। वह सौंदर्य का उपासक तो अवश्य था, लेकिन उस सौंदर्य को अपने आवरण में ढँकना पसन्द नहीं करता था।

चन्द्रनाथ कहता, स्त्रियाँ झंझट, चिन्ता और कोलाहल की चिनगारियाँ हैं। स्त्रियों के प्रति ऐसा भाव होते हुए भी वह बन्धन मे जकड़ा हुआ था। सम्भवतः इन बन्धन के कारण ही उसके हृदय मे ऐसे विचार स्थिर हुए हों। किन्तु जो कुछ भी हो चन्द्रनाथ क्षणिक बुद्धि का व्यक्ति था। कभी-कभी अपनी स्त्री से वह बिगड़ कर अपना भयानक रूप दिखलाता—बड़बड़ाता हुआ घर से बाहर निकल जाता और कभी हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से क्षमा याचना करता। वह यह भी कहता कि यह विजया न होती तो आज मैं बेकार लावारिस होकर सड़कों पर भटकता फिरता, मेरा कहीं ठिकाना न लगता और मेरे जैसे-स्वभाव के आदमी का साथ निबाहना उसी का काम है।

अभी कल की घटना है। वह शराब पीकर घर लौटा था, कुछ पैसों के लिए। उसने बहुत दीन भाव से याचना की थी। लेकिन उसकी पत्नी ने अत्यन्त रूखे शब्दों में कहा—तुम दुनियाँ की सब बाते समझते

हुए भी इतने नादान बने रहते हो, यह कैसी विलक्षण बात है ? तुम्हे मालूम है कि मकान वाले का तीन महीने का किराया, पानवाले, दूध वाले और उस बनिये को कितने रुपये देने हैं ? दो दिन हुए इतनी कठिनाई में एक चित्र का मूल्य मिला और उसे नष्ट करने की धुन तुम्हे सवार हो गई।

चन्द्रनाथ उसकी ओर देखता रहा ! अन्त में जब उसने देखा कि वह किसी तरह भी रुपया देने के लिए प्रस्तुत नहीं है, तब उसने कहा—तुम्हारी ये सब उपदेश की बाते मुझे पसन्द नहीं हैं ! मैंने पचास बार तुम्हे समझा दिया कि मेरे मज़े में कभी बाधा न डाला करो। मैं जो कुछ करूँ, करने दो। जब मैं शराब से उन्मत्त होकर भटकूँगा तभी भावनाये मेरे सम्मुख आवेगी और तब "मूड" मे आकर मैं चित्र बनाना आरम्भ करूँगा। फिर तुम देखोगी कि पैसों की कमी न रहेगी।

विजया ने तर्क करते हुए कहा—लेकिन तुम तो सब इसी तरह पीकर नष्ट कर देते हो और काम में मन भी नहीं लगाते। कितने चित्र पडे हुए हैं और तुम उन्हे पूरा भी नहीं बना पाते।

चन्द्रनाथ नशे की खुमारी मे कहने लगा—मुझे दुख है, विजया ! तुम एक आर्टिस्ट की मनोवृत्तियों को परख नहीं सकती हो। मैं दो ही स्थितियों में काम कर सकता हूँ। या तो मेरे पास जूते की ठोकरों से फेकने के लिए रुपये हों या फिर भोजन तक का प्रबन्ध न हो। तभी मैं काम कर सकता हूँ। लेकिन तुम्हारे कारण इन दोनों स्थितियों में से एक को भी मैं नहीं अपना सकता। इस में मेरा क्या दोष है ?

विजया ने दुखी होकर कहा—तब क्या मेरा ही दोष है ? तुम्हारे लिए, सब तरह कष्ट उठाते हुए भी तुम्हे सुखी न बना सकी, यह मेरा दुर्भाग्य है। कहते-कहते उसकी आँखें छल-छला पड़ीं।

चन्द्रनाथ ने गर्दन सीधी करते हुए कहा—दुर्भाग्य तुम्हारा नहीं, इस भूमि का, इस देश का है, जहाँ हम लोग उत्पन्न हुए हैं। एक कलाकार की यही प्रतिष्ठा है ? यदि मैं पाश्चात्य देशों में पैदा हुआ होता तो मेरे एक एक चित्र हज़ारों के दाम में बिकते, लेकिन यहाँ कोई दस-पाँच भी देनेवाला कठिनाई से मिलता है। इसमें न तुम्हारा दोष है, न मेरा।

इतना कहते हुए चन्द्रनाथ विजया के आँचल से उसके आँसू पोंछते हुए कहने लगा—लाओ, दो। अब विलम्ब न करो।

विजया ने कुछ रुपये लाकर चन्द्रनाथ के हाथ पर रख दिये।

चन्द्रनाथ ने प्रसन्न होकर कहा—मैं बारह बजे रात तक लौटूँगा। तुम सो जाना। मेरी प्रतीक्षा न करना। मैं द्वार खोल लूँगा।

वह चला गया।

विजया अपने पलँग पर पड़ी सोचती रही कि यह कला कौन सा जन्तु है।

२—उदय

उस दिन रविवार था। उदय का दफ्तर बन्द था। एक सप्ताह के कठिन परिश्रम के बाद एक दिन का विश्राम मिलता था। इसीलिए इसका बड़ा महत्त्व था। रविवार के दिन चन्द्रनाथ की बैठक में काफी चहल-पहल रहती। दिन भर ताश चलता रहता।

उदय भोजन करके दोपहर मे चन्द्रनाथ के यहाँ आया। अरविन्द भी वहीं बैठा था। कुछ और लोग भी थे।

उदय ने कहा—भाई, आज चार बजे तक मुझे एक बार दफ्तर जाना होगा। छुट्टी के दिन भी सब छोड़ना नहीं चाहते।

चन्द्रनाथ ने कहा—तब क्या तुम भाँग-बूटी के साथ नहीं रहोगे ?

उदय ने उदासीनता से कहा—क्या करूँ ? नौकरी का प्रश्न है। घोर परिश्रम करके भी चैन की नींद नसीब नहीं। नाम के लिए एक पत्र का सहकारी सम्पादक हूँ। दिन भर प्रूफ देखता हूँ, लेखों का संशोधन करता हूँ, पत्रों का उत्तर देता हूँ, ग्राहकों का नाम रजिस्टर पर चढाता हूँ। पीर, बबर्ची, भिश्ती, खर वाला हिसाब है। इस पर भी सञ्चालकों की दृष्टि सीधी नहीं रहती। पता नहीं, वे लोग यह भी चाहते हों कि उनका लड़का भी खिलाया करूँ और घर का सौदा भी ला दिया करूँ।

चन्द्रनाथ ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—यह सब व्यर्थ है। छोड़ो नौकरी। इस तरह नहीं चलेगा। भाँग छान कर चुपचाप मौज लो। सब काम अपने आप चलेगा। मनुष्य जितना ही सोचता है, परिस्थितियाँ उतनी ही शीघ्रता से उसके ऊपर आक्रमण करती हैं।

उदय ने संकोच से कहा—अकेला होता तो कोई चिन्ता नहीं थी। बाल-बच्चों की जीविका का भी प्रश्न है।

अरविन्द अभी तक शान्त बैठा था। वह बातें सुन रहा था। वह बोल उठा—साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति का एकाकी जीवन ही अधिक उपयुक्त होता है। आज अकेले होने के कारण ही मैं इन सब झंझटों से अलग हूँ। पिताजी के कई पत्र आ चुके। वे मुझे विवाह के बन्धन में बाँधना चाहते हैं। लेकिन मैं जिम्मेदारी का बोझ उठाने में असमर्थ हूँ।

चन्द्रनाथ ने कहा—विवाह हो जाने के बाद ही तुम्हारी भावुकता का अन्त हो जायगा और फिर तुम्हारी कविता शिथिलता की समाधि बना लेगी।

इसके बाद कुछ देर तक सब लोग जैसे इस जटिल प्रश्न पर विचार करते रहे। सब चुप थे।

उदय ने अपना प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहा—आज का मौसम बहुत प्यारा है। अरविन्द अगर कविता सुनावे तो कहीं अच्छा हो। सबने समर्थन किया।

अरविन्द के सामने हारमोनियम रक्खा गया। चन्द्रनाथ तबला ठीक करने लगा। आकाश बादलों को एकत्र कर रहा था। बूँदें गिरने लगीं। पवन का वेग द्वार बन्द करने लगा। अरविन्द ने अपने मधुर स्वर में गाना आरम्भ किया—

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे !

जब सावन-घन सघन बरसते,

इन आँखों की छाया भर थे।

मुग्ध होकर सब सुन रहे थे। चन्द्रनाथ ठेका भी कुशलता से दे रहा था।

ठीक उसी समय मकानवाला द्वार पर दिखलाई दिया। चन्द्रनाथ उसकी सूरत देखते ही निर्जीव-सा हो गया !

वह कमरे में आकर खड़ा हो गया। चन्द्रनाथ ने साहस से पूछा—कहिए ?

उसने कर्कश स्वर में कहा—क्या कहूँ ? मकान का किराया देने मे आप बहुत परेशान करते हैं। अब मैं किसी तरह नहीं मान सकता।

चन्द्रनाथ ने कहा—रुपया मिलता ही नहीं है क्या करूँ ?

उसने ऊँचे स्वर में कहा—तब मकान छोड़ दीजिए। हारमोनियम-तबला बजता है, मौज उड़ती है और मकान का किराया देने को रुपया नही है। ऐसे भले आदमी तो मैंने देखे ही नहीं थे। बस हो चुका। तीन दिन के अन्दर मकान खाली कर दीजिए। नहीं तो अच्छा नहीं होगा।

वह सम्पूर्ण आनन्द में धूल फेंक कर उसे किरकिरा बनाता हुआ चला गया था।

चन्द्रनाथ चुप था। यह एक विचित्र समस्या थी।

*　　*　　*　　*

चन्द्रनाथ ने मकान छोड़ दिया। चलते समय मकान वाले ने कुछ चित्र और सामान लेकर ही सन्तोष किया।

अरविन्द के पिता का पत्र आया था। उसमें उनकी बीमारी का समाचार था। अतएव वह भी चला गया।

उदय का सञ्चालकों से झगड़ा हो गया। इसलिए वह भी नौकरी छोड़ कर चला गया।

इस तरह बरसाती धूप की तरह उनके जीवन का कार्य-क्रम सदैव बदलता रहा।

उन तीनों के पड़ोस छोड़ देने पर पड़ोस के लोग कुतूहल में थे।

एक ने कहा—वे सब आवारा थे!

दूसरे ने कहा—सब बहुरुपिया थे!

तीसरे ने कहा—वे सब कुछ सनकी भी थे!

पता नहीं, अब आप क्या कहेंगे?

अभागों का घर

जीवन के सुहावने दिन समय की निष्ठुरता में अपने अस्तित्व को नष्ट कर चुके थे। वर्षों से मन में शान्ति न थी। शरीर अस्वस्थ रहता था। प्रतिदिन की निराश उदासीनता ने मेरी दिनचर्य्या को हाहाकार-मय बना डाला था। जीने में कोई सुख नहीं, फिर भी जीना होगा, रो-रो कर जीना होगा, मरने के लिए जीना होगा—ऐसा इस विश्व का नियम है!

मैं अस्पताल के एक कमरे में आराम कुर्सी पर लेटा था। बिजली के प्रकाश मे कमरा आलोकित था। रुग्णावस्था में दार्शनिक विचार बहुधा मस्तिष्क के चारो ओर मँडराया करते हैं। मैं इसी तरह की बातों मे तल्लीन था। बहुत देर तक सोचता रहा। अन्त मे इस निर्णय पर पहुँचा कि यह सब व्यर्थ है। जीवन में दो ही सत्य हैं—प्रसन्न रहना और मर जाना।

इसी समय एक कविता की कुछ पंक्तियाँ मैं गाने लगा—

तुम कनक किरन के अन्तराल में
लुक-छिप-कर रहते हो क्यों?

द्वार पर खड़ी मिस क्रेसी ने पूछा—मैं भीतर आ सकती हूँ? मैंने कहा—जी हाँ, आइये।

क्रेसी अस्पताल की नर्स थी। उसकी श्रेणी की अनेकों नर्सें प्रतिदिन "ड्यूटी" बदलने पर मेरा द्वार खटखटाती थी। मेरी सेवा का भार अनेकों पर था। लेकिन क्रेसी को मेरी विशेष चिन्ता थी। उसकी आँखों से यह प्रकट होता था कि वह प्रतिक्षण यह चाहती रहती है कि मैं

शीघ्र ही निरोग हो जाऊँ। उसके सरल और गम्भीर भाव तीव्र गति से मेल-जोल बढ़ा रहे थे।

केसी ने मेरे समीप आकर पूछा—आज तो आप प्रसन्न मालूम पड़ते हैं?

मैंने उसकी ओर देखते हुए कहा—क्यों?

उसने कहा—इसलिए कि अभी आप गा रहे थे।

मैंने कहा—क्या गाने से ही प्रसन्नता की सूचना मिलती है?

उसने गंभीरता से उत्तर दिया—जब मनुष्य के हृदय में प्रसन्नता गुदगुदाने लगती है, तभी वह गाता है। अथवा वेदना जब हृदय मे फूल उठती है, तब वह गीत का हार गूँथने लगती है।

मैंने कहा—हूँ!

मैं कई दिनो से उसकी बातों से ही उसको टटोल रहा था। वह भोली और गंभीर थी। दूसरी नर्सों की भाँति बात-बात में हँसना, भाव-प्रदर्शन करना इत्यादि विशेषताएँ उसमे न थी। मेरे लिए वह एक पहेली बन गई थी। मैं चुपचाप उसकी ओर देख रहा था।

उसने कहा—आप की दवा का समय हो गया है।

मैंने कहा—ठीक है, लाओ।

उसने काँच के एक छोटे से गिलास मे दवा उड़ेली। इसके बाद उसे लाकर मेरे ओठों से लगाया। मैं आँखे बन्द किए हुए एक ही साँस में पी गया।

उसने पूछा—दवा कड़वी है—कष्ट होता है?

मैंने कहा—विशेष नहीं।

नित्य का यह नियम था कि आठ बजे मुझे दवा पिलाकर वह चली जाती थी। उस दिन का उसका कार्य समाप्त हो जाता था।

२

वर्षा के अन्तिम दिन जाड़े के सूर्य की प्रथम किरणों की प्रतीक्षा में अपनी आँखें बिछाये हुए थे। मेरे उज्ज्वल दिवस विश्राम की चादर ओढ़े, थके पड़े थे। मैं कराहता था, हँसता था, गाता था। संसार में कौन किसका है ? कौन किसके लिए रोता है ? यह सब कोरी कल्पना है। स्वार्थ की रुलाई निराशा के अन्धकार में डूब जाती है, हम लोग सब भूलने लगते हैं। स्नेह-प्रेम, उत्साह और प्रसन्नता को कुचलता हुआ मनुष्य कहाँ-से-कहाँ चला जाता है।

आज एक मास से मैं अस्पताल की इसी स्प्रिङ्गदार शय्या पर पड़ा जीवन-मरण के अगणित प्रश्नों का उत्तर-प्रत्युत्तर देता रहा हूँ। कल दिन भर बुखार चढ़ा था। क्रेसी ने चार बार "टेम्परेचर" लिया। उसने उदास आँखों से कई बार मेरी तरफ़ देखा था। मेरी आँखों में ज्वाला थी।

ज्वर शान्त हो गया था। अकेले बैठे बैठे मन नहीं लगता। अतएव मैं कभी बरामदे में टहलता हुआ अन्य रोगियों की अवस्था देखता था। आज तो बड़ी ही भयानक दुर्दशा एक रोगी की देखी—ओह ! उसका मुँह फूल कर फ़ुटबाल हो गया था। उसे बड़ी पीड़ा हो रही थी। 'स्ट्रैचर' पर लाकर उसे बाहर की शय्या पर सुलाया गया था। मैं उसे देख कर भयभीत हो गया। फिर भी अपने कमरे के द्वार पर खड़ा देखता रहा।

डाक्टरों का समूह उसकी परीक्षा कर चुका था। आपरेशन हो रहा था। क्लोरोफार्म से वह बेहोश था। एक डाक्टर छुरियों से उसका माँस काट कर निकाल रहा था और क्रेसी उसे सहयोग दे रही थी। खून से उसका हाथ लथपथ हो रहा था। मैं काँप उठा। ठीक उसी समय बड़ी मेम निरीक्षण करने के लिए आ रही थीं।

मैंने उन्हे देख कर कहा—गुडमार्निङ्ग, सिस्टर।

उन्होंने मेरे समीप आते हुए कहा—गुडमार्निङ्ग–हाऊ आर यू ?

मैंने बड़ी नम्रता से कहा—अब मैं नीरोग हो रहा हूँ। इस सप्ताह मैं एक पाउण्ड बढ़ा हूँ।

मुझे, प्रसन्नता है"—मुस्कराकर कहते हुए वह आगे बढ़ीं। मैं अपने कमरे में चला आया।

उस दिन संध्या समय क्रेसी मेरे कमरे में आई। मैं कुर्सी पर बैठा था। उसने लोशन की शीशी, हाथ में लेकर मेरे केशों को तर किया। इसके बाद कंघी से मेरे बालों को सँवारने लगी। वह चुप थी।

मैंने आँखें बन्द किये हुए कहा—तुम्हारे कार्यों को देख कर मुझे आश्चर्य होता है! वह कितना भयानक रोगी आया है और तुम कितने साहस से उसकी सेवा करने में तत्पर रही हो। तुम्हारे मुख पर तनिक भी घृणा का भाव प्रकट नहीं होता था। सचमुच तुम बड़ी विचित्र हो।

उसने कहा—यही मेरा जीवन है!

उसकी बड़ी-बड़ी आँखें गंभीरता का प्रकाश उड़ेल रही थीं।

मैं चुप था।

उसने फिर कुछ देर सोचकर कहा—सेवा ही हमारी जीविका है।

मैंने कहा— तुम धन्य हो, तुम्हारा ही जीवन सार्थक है।

३

इसी तरह एक सप्ताह और समाप्त हुआ। मैं अब स्वस्थ हो गया था। क्रेसी के प्रतिदिन के कार्य-क्रम मुझे उपन्यास के परिच्छेद की भाँति आकर्षक प्रतीत होते थे। उसकी जीवन सबंधी घटनाऍं मेरे मस्तिष्क की खुराक बन गई थीं। नौकरों से जब बातें होतीं, तब उसी की चर्चा। रोगियों से भी जब वार्तालाप होता, तब उसी की प्रशंसा !!

एक दिन एक बूढ़े रोगी ने मुझसे कहा—महाशय, इस छोटी मेम ने मेरी जान बचाई है। क्या ऐसी सेवा घर में अपनी माँ-बहन भी कर सकती हैं? भगवान इसका भला करें। मैं जीवन भर इसका गुण गाऊँगा।

उसी समय क्रेसी वहाँ आगई। उसने बूढ़े रोगी की तरफ देखते हुए बड़े प्यार से कहा—तुम दिन-भर बातें करते हो?

उसने प्रेम से गद्गद् होकर कहा—क्या करूँ, माँ, अपना मन बहलाता हूँ।

मैं वहाँ से हट गया। क्रेसी भी अपना काम करने लगी।

वह रोगी क्रेसी को 'माँ' ही पुकारता था। उसके इस सम्बोधन मे कृतज्ञता थी—सरलता थी।

दोपहर का समय था। इस समय क्रेसी को थोड़ी देर के लिए अवकाश मिलता था। मैं लेटा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। वह आई। मैंने पुस्तक रखते हुए कहा—क्या आज्ञा है?

उसने कहा—आप समाचारपत्र पढ़ चुके? मैं ले लूँ?

मैंने कहा—हाँ, प्रसन्नता से।

उसके मुख की गंभीरता सदैव उदासीनता की खाई में छिपी रहती थी। मेरे लिए यह एक कौतूहल था।

आज साहस कर के मैंने कहा—एक बात पूछना चाहता हूँ, यदि इसे अनुचित न समझो।

उसने कहा—हाँ, पूछिये......

मैंने कहा—यहाँ पर जितनी नर्सें हैं क्या जीवन-भर वे अविवाहित ही रहेंगी?

मेरे इस मूर्खतापूर्ण प्रश्न पर उसे आश्चर्य हुआ।

उसने कहा—नहीं तो, इनमे से अनेक उपयुक्त पति प्राप्त हो जाने पर, अपना विवाह कर लेंगी।

मैंने धृष्टता से पूछा—और तुम ?

उसने कहा—मैं जब भी इस प्रश्न पर विचार करती हूँ, मेरा उत्तर यही होता है कि मैं अविवाहिता रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करूँगी।

मैंने उत्सुकता से पूछा—ऐसा क्यों ?

उसने कहा—पुरुषों पर मेरा विश्वास नहीं है, फिर भी उनकी सेवा मेरी जीविका है। मैं बचपन से ही अनाथ हूँ। मेरे पिता का, माँ के प्रति, सदैव ही दुर्व्यवहार रहा है। मेरी माँ का कष्टों में ही अन्त हुआ था।......कहते-कहते वह चुप हो गई।

इतने दिनों के परिचय के बाद उसने जैसे अपने हृदय की बात कही थी।

वह फिर एक शब्द भी न बोली, चुपचाप मेरे कमरे से चली गई।

४

तीन वर्ष बीत चुके थे।

उस दिन महीनों भ्रमण करने के बाद परदेश से मैं घर लौट रहा था। मुग़लसराय स्टेशन पर गाड़ी ठहरी। बड़े कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। कुहरा छाया हुआ था। सूर्य की किरणें आकाश में फैल रही थीं। मैं 'चाय' पीने के लिए गाड़ी से उतरा।

सामने ही बगल के प्लेटफार्म पर बम्बई-मेल खड़ी थी। मुझे वहाँ एक अपनी परिचित आकृति दिखलाई पड़ी। मैं समीप गया। आश्चर्य से मैंने पूछा—मिस क्रेसी ?

उसने मेरी ओर उसी तरह आश्चर्य से देखा। उसके साथ एक युवा पुरुष भी था।

मैं भावोन्मत्त होकर कहने लगा—इतने दिनों के बाद तुम्हें देख कर मन होता है कि तुम्हारी गाड़ी में बैठकर तुम्हारे साथ ही चलूँ।

उसने उस पुरुष की ओर देखते हुए मुझसे कहा—मैंने बहुतों की सेवा से थक कर अब केवल इन्हीं की सेवा का भार लिया है। यह मेरे पति हैं। अब मैं विवाहिता हूँ।

वह पुरुष मुस्करा रहा था।

मैं सचेत होकर दोनों की ओर देख रहा था। सहसा मेरे मुख से निकला—भगवान् तुम लोगों को प्रसन्न रखें।

ठीक उसी समय इंजिन ने सीटी दी। गाड़ी चलने लगी। खिड़की से वे दोनों रूमाल हिला रहे थे। मैं प्लेटफार्म पर खड़ा रूमाल से उनका उत्तर दे रहा था।

घृणा का देवता

कभी तुम प्यार के आवेश में आकर बहुत सरल बन जाते हो और कभी जङ्गली जन्तु की तरह आक्रमण करते हो? तुम्हारे इस प्यार के रहस्य को समझना कठिन हो जाता है।—कहते-कहते वह उसकी मुखाकृति देखने लगी।

उसने उसकी आँखों से आँखें मिलाकर कहा—मनुष्य के हृदय में किस समय क्या रहता है, इसे कौन जानता है? मन उस सूखे पत्ते की तरह है, जो पवन की चञ्चल गति में पड़कर कब जाने कहाँ चला जाता है। रो-रोकर सिसकियाँ भरनेवाले दिन मौन होकर किसकी आराधना करते हैं, यह कौन बता सकता है? आज एक साँस में जिस सौन्दर्य-मदिरा को पी जाने की अभिलाषा होती है, कल उसी में कटुता दिखलाई पड़ती है। वासना पैसों से पाली जाती है। जिसे लोग प्रेम कहते

हैं, वह चमाचम के आवरण में ढँक जाता है। काल्पनिक जगत में विचरण करनेवाला भावुक, वास्तविक जगत का खिलौना बन जाता है। दुनिया की आँखे मुझे देख कर मेरा तिरस्कार करे, यही मेरी अभिलाषा है।

उस दिन शरद-पूर्णिमा थी।

असख्य मानव-जाति के हृदयों को निचोड़ कर चन्द्रमा प्रकाश उडेल रहा था। चाँदनी उसके समीप बैठी हुई थी। उसकी नस-नस में यौवन का उन्माद भरा हुआ था। मनुष्य अपनी आकांक्षाओं की गठरी बना कर जीवन भर निराशा के पथ पर उसे ढोता रहता है। इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, वासना निर्जीव हो जाती है, लेकिन यह लाखों वर्ष की बूढ़ी चाँदनी आज भी कितने अल्हड़पन से मुस्कराती हुई, प्रश्न पूछ रही है।

उसने खिलखिला कर उससे पूछा—देखती हूँ, तुम कहीं पागल न हो जाओ।

उसने उत्तर दिया—पागल होने पर भी यदि शान्ति मिलती।

* * * *

उसने आकाश की ओर देखा। चन्द्रमा के पास एक सफेद बादल का टुकड़ा मँडरा रहा था। चाँदनी ने उसकी कालिमा को धोकर उसे उज्वल बना दिया था।

वह एकटक देखने लगा। किसी समय अपने बचपन के दिनों में उसने इसी तरह के बादल के टुकडों को पशु, पहाड़ आदि की आकृति मे बनते बिगड़ते देखा था। आज केवल एक टुकडे में वह ऐश्वर्य की रङ्ग बिरङ्गी पुतलियों की छवि देख रहा था। चाँदनी परदा हटा रही थी। प्रकृति गम्भीरता का आकार बनाए खड़ी थी।

प्रथम किरणे जिस समय आकाश के हृदय पर दौड़ी थीं, उस समय

कौन आया था ? आज युगों की गोद में बैठनेवाली स्मृति अपनी तालिका दिखा रही थी।

एक के बाद दूसरा, इस तरह कितने ही चित्र सामने आए और विलीन हो गए। रात्रि अपना तीन खण्ड समाप्त कर चुकी थी। सफ़ेद बादल के टुकड़े में घृणा की एक विशाल मूर्ति अपने हाथों से सबको नष्ट-भ्रष्ट करके अटल खड़ी थी।

वह ध्यान से देखने लगा। चाँदनी सन्नाटे की चादर ओढ़ कर बिदा की तैयारी कर रही थी। कुछ देर में यह समस्त प्रकृति का खेल छिन्न-भिन्न हो जायगा। प्रत्येक क्षण संसार की नश्वरता की ओर संकेत कर रहा था। कलह और द्वन्द्व का साम्राज्य अपने अस्तित्व को स्थायी बनाने की चेष्टा कर रहा था।

वह हँसा। उस हँसी में भयानकता की आत्मा पुकार रही थी। उसने देखा—रात यों ही जागते कट गई है। इस तरह कितने दिन व्यतीत हुए हैं। अब जीवन का कोई कार्यक्रम नहीं रहा। घृणा की ज्वाला जल रही थी। मनुष्य की चिता जल कर राख हो जाती है; लेकिन यह अनन्त काल तक जलती रहेगी। विश्वासघात, कुटिलता, दूसरे को हाहाकार के पञ्जे में जकड़ देने की कामना यह सब कैसी अद्भुत पहेलियाँ हैं। इनका मनुष्य ने स्वय निर्माण किया है अथवा विधाता की सृष्टि के साथ ही ये आए हैं ?

प्रभात की लाली ऊपर उठी। चाँदनी शिथिल हो, निशाकर से बिदा लेकर विश्राम के लिए कहीं जा रही थी।

उसकी सम्पूर्ण कहानी सुनने के बाद भी चाँदनी निष्ठुरता के साथ खिसक गई।

सूर्य के प्रखर प्रकाश के साथ वह उठ बैठा। उसकी आँखें लाल थीं। उसने देखा, आकाश झुलसा हुआ था।

सब कुछ इसी तरह नष्ट करके विधाता का विचित्र खेल किस दिन विध्वंस होगा।

* * * *

दिन पर दिन उसका शरीर ढलता चला गया। मानवसमाज से घोर घृणा करते हुए, वह जैसे अपने को ही मिटा देने के लिए तुला हुआ था। बदले की प्रवृत्ति नहीं थी।

डाक्टरों का मत था कि क्षय का पूर्ण आक्रमण उसके ऊपर हो चुका है। उसे अपने कार्यक्रम मे परिवर्त्तन करना होगा, अन्यथा उसका अन्त बहुत शीघ्र आनेवाला है। लेकिन उसे इसकी परवाह न थी।

एक दिन उसने निश्चय किया कि अब जीवन का शेष समय किसी पहाड पर व्यतीत करना ठीक होगा। नगर के कोलाहल की ध्वनि अनायास ही अपने बाहुपाश में बाँधना चाहती है। झूठी सहानुभूति में स्वार्थ की प्रतिमा अपना विकृत मुँह दिखा रही थी।

उसका दो मास पर्वत-मालाओं के ऊपर व्यतीत हुआ। प्रकृति के मनोरम चित्रों में प्रति दिन वह कुछ अन्वेषण करता।

यहाँ पर भी मनुष्यों ने उसका साथ नहीं छोडा। "यह क्षय का रोगी समस्त वायु-मण्डल दूषित कर रहा है, इसे यहाँ से निकाल देना होगा।" सब सशङ्क होकर उसकी ओर देखते। वह दिन-रात खाँसता रहता।

उस दिन दया की एक मूर्ति उसके सामने आई। उसने कहा—भाई, यहाँ बहुत से लोग अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए आते हैं। तुम्हारा यह रोग उनके लिए घातक हो सकता है। अतएव कृपा करके यह स्थान छोड़ दो।

उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। सन्ध्या समय वह घर से निकला। एक पत्थर के टीले पर बैठ कर वह सोचने लगा। चारो तरफ पहाड़

घिरे हुए थे। खाई से बादल निकल रहे थे। उसने देखा—पहाड़ की ऊँची रेखाएँ आसमान का आलिङ्गन कर रही थीं। पश्चिमी कोने में सन्ध्या अपनी लालिमा एकत्रित कर रही थी।

वह तन्मय होकर देखने लगा। क्षण भर में खाँसी आई और उसके मुँह से रक्त की धारा निकली, जिसे उदास सन्ध्या अपने साथ लेकर न जाने कहाँ विलीन हो गई !

सुख

१

उत्तरदायित्व-हीन श्यामलाल की गणना वैसे लोगों में होनी चाहिए, जो बुद्धिमान् होने पर भी अपने स्वभाव की दुर्बलता के कारण पदच्युत हो जाते हैं। जब तक वह घर में रहते, अपनी स्त्री के आगे सिर न उठा सकते थे। उस सती के सामने वह अपने को अत्यन्त नीच समझते थे। परन्तु घर के बाहर होते ही वह अपने मित्रों के अनुरोध को भी नहीं टाल सकते थे।

एक दिन, उनकी स्त्री उनका तिरस्कार कर, अपने दो वर्ष के बच्चे को लेकर अपने बाप के घर चली गई। उन्होंने चुपचाप वह तिरस्कार सह लिया। सुख की लालसा ने उन्हे विपथ की ही ओर खींचा था। परन्तु उन्हे तृप्ति न हुई।

वह मखमली विस्तरे पर लेटे थे। लेटे-लेटे उनके सम्मुख अतीत के सभी दृश्य फिर गये। वह विचार करने लगे,—इतना सुख उठाया, मोटर-फिटन पर घूम चुका, तरह-तरह के थियेटर देख चुका, तरह-तरह की सुन्दरियों का छवि-पान कर चुका ; पर सुख फिर भी क्यों नहीं मिलता ? मेरा मन चिन्तित क्यों रहता है ?

वह आलमारी मे रखी हुई शराब की खाली बोतलों और अतर को छूछी शीशियों की तरफ देखते, और कभी कमरे की सजावट को सतृष्ण नेत्रों से देखते रह जाते ! किन्तु यह सब आज उन्हे दूसरे ही रूप में दिखाई पड़ते। मानों सब कह रहे थे—मेरी ही तरह तुम्हारे सुख के दिन भी खाली हो रहे हैं।

२

नीलाकाश में मेघों से छिपा हुआ चन्द्रमा निकल पड़ता है; चकोर उसकी प्रतीक्षा करता है, भ्रमर फूलों का रस लेता है, पतंग दीपक का आलिंगन करता है। उसी तरह मानव की तरुण अवस्था में प्रेम-तन्त्री बज उठती है ! उसकी झंकृति व्याकुल हो जाती है। वह हृदय को अनमना कर देती है और मनुष्य को पागल बनाकर सैकड़ों राहों में घुमा देती है।

प्रेम-तन्त्री की झंकृति में एक नशा है। इस नशे के आवेश में मनुष्य सौन्दर्य और विलास का इच्छुक बन जाता है; पर जब यह नशा समुद्र की लहरों की तरह पीछे की तरफ हट जाता है, तब उसके वास्तविक रूप का ज्ञान होता है।

वही नशा श्यामलाल को भी चढ़ा था। उस समय उनके नेत्रों के सम्मुख अन्धकार का एक परदा पड़ गया था। वह सब कुछ भूल गये—खुद अपने को भी भूल गये।

किन्तु अब अभिनय समाप्त होने वाला था—आखिरी परदा गिरने मे थोड़ी ही देर थी।

देखते-देखते कई मास बीत गये। श्यामलाल को उनका घर अब काटने दौड़ता था। दिन-भर एकान्त मे बैठे-बैठे कुछ सोचा करते। उनकी तबीअत उदास रहा करती। अब उनसे कोई बात करनेवाला भी न था।

उनकी सब जायदाद बिक चुकी थी, केवल कोठी रह गई थी, तिसपर भी कर्जदारों के कड़े तकाजे सुनने पड़ते थे। नौकर-चाकर चले गये, रह गया बेचारा एक 'बुधुआ'!

३

चिन्ता और स्मृतियों ने श्यामलाल के हृदय में अपना घर बना लिया। उन्होंने अपना घर-बार छोड़ कर निर्जन वन-प्रान्त की राह ली।

प्रभात का समय था। सूर्य आकाश में ऊपर उठ रहे थे। सूर्य की किरणें गंगा की इठलाती हुई लहरों का आलिंगन कर रही थीं। कभी-कभी शीतल मलय-पवन का एक झोंका शरीर को स्पर्श करता हुआ चला जाता था। दूर पहाड़ों की एक कतार दिखलाई देती थी। वह उसी स्थान पर खड़े हुए प्रकृति की अपूर्व शोभा देख रहे थे।

उन्होंने अपने अन्तःपटल पर पूर्व-काल की स्मृति का एक रेखा-चित्र देखा। वह दुखी हो गये। अपने दुख के भीतर उनकी अन्तरात्मा किसी के प्रेम को छिपाए हुई थी; परन्तु वह नहीं जानती थी कि किसे प्यार करती है, और अब भी कौन उसका सच्चा प्रणय-पात्र है; कभी-कभी वह पत्थरों और चट्टानों को सम्बोधन करके पूछती—तुम कौन हो? एक नीरव संकेत में उत्तर मिलता—हम लोग भी उसी श्रेणी के जीव हैं, जिस श्रेणी के तुम।

उस समय आकाश के सैकड़ों तारे, चन्द्रमा और सूर्य भी चुपचाप मानों इसी उत्तर का समर्थन कर रहे थे।

मेघों की झड़ी, गगा की सिकता, पृथ्वी की धूल, वृक्षों की पत्तियाँ, पक्षियों की कलध्वनि और मन की विचार-मालाएँ साफ-साफ कहती थीं कि जो तुम चाहते हो, हम लोग वह नहीं हैं। जाओ, दूसरी जगह अपनी चाह की वस्तु खोजो।

*　　*　　*　　*

तरह-तरह के सुन्दर दृश्य देखने, चिन्ता और विचार करने मे एक मास बीत गया; पर सुख का पता न चला। उन्होंने सोचा था—जंगलों में भ्रमण करूँगा, तरह-तरह के दृश्य देखूँगा, और प्राकृतिक सौन्दर्य की उपासना में अपना सारा जीवन व्यतीत करूँगा। पर एक ही मास में वह चारों तरफ से ऊब गये। एक निराश प्रेमी को जिस प्रकार संसार सूना लगता है, उसी प्रकार उनको भी ससार से घृणा हो गई। संसार ने जब उन्हे ठोकर लगाई, तब ईश्वर में उनकी भक्ति उत्पन्न हुई। उनके विचारों की समाधि लग गई।

कुछ देर बाद उन्होंने फिरकर देखा—पास ही एक स्वामीजी गगा-तट पर बैठे और माला फेरते हुए बार-बार उनकी तरफ देख रहे है। स्वामीजी के नेत्रों से उनके प्रति सहानुभूति प्रकट हो रही थी।

थोडी देर बाद स्वामीजी ने कहा—किस चिन्ता मे पड़े हो बच्चा?

कुछ नहीं महाराज, मैं ससार-रूपी नाटक गृह से, अभिनय के उपयुक्त पात्र न होने के कारण, निकाल दिया गया हूँ।

स्वामीजी—एक दिन तो सभी निकाले जाते हैं, किंतु जो समय रहते स्वय निकल जाय, वह सम्मानपूर्वक निकलता है। भगवान् की शरण मे जाओ, वहीं शान्ति मिलेगी।

श्यामलाल—उसी की आशा है। देखूँ, अपनी शरण मे लेते हैं या नही। मुझे तो सन्देह है।

स्वामी—संसार के वातावरण में सन्देह ही है, उसकी छाया से हटो, शान्ति निश्चय मिलेगी।

श्यामलाल—तब महात्माजी, आप ही दया कीजिए।

स्वामी—तुम स्वय इसके लिए प्रस्तुत हो जाओ।

श्यामलाल ने स्वामीजी के चरणों में सिर रखा, और वस्त्र उतारकर दीक्षा लेने की तैयारी में लगे। दो एक धर्माधिकारी भी जुट गये।

उपकरण प्रस्तुत हो गया। श्यामलाल का सिर मूँड़ने में एक क्षण की देर थी।

उसी घाट पर सीढ़ियों में दबकी बैठी हुई एक स्त्री बड़ी देर से यह कांड देख रही थी! अब वह आकर स्वामीजी के पास खड़ी हो गई। बोली—आप यह क्या कर रहे हैं! क्या संसार भर को भिक्षुक बनाकर आप पुण्य कर रहे हैं? जो कायर मनुष्य स्वयं जिम्मेदारी उठाने में असमर्थ है, उनके बोझ आप दूसरों से उठवाना चाहते हैं? क्या आपको मालूम है कि इनके पुत्र और स्त्री भी हैं, जिनकी संसार-यात्रा का इन्होंने कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया है।

स्वामीजी तेजस्विनी रमणी की इस फटकार को सुनकर सहम गये। उन्होंने श्यामलाल से पूछा—क्यों, तुम्हारे स्त्री और पुत्र भी हैं?

श्यामलाल ने सिर उठाकर कुन्ती की ओर देखा। उसकी दृष्टि मे संकोच और दीनता थी।

कुन्ती ने उसी साहस से कहा—उठिए नाथ, चलिए संसार में। क्या धन ही सब सुखों की जड़ है? विलासिता में न रहकर हमलोग एक दूसरे के सहारे मनुष्योचित जीवन व्यतीत कर सकते है।

तुम सुख की खोज खूब कर चुके अब तुम्हे मेरे साथ दुःख की भी खोज करनी होगी। देखो तो, इसमे भी कुछ सुख मिलता है?—यह कहकर उसने श्यामलाल का हाथ पकड़ा, और कोठी की ओर ले चली।

* * * *

श्यामलाल अब एक साधारण गृहस्थ हैं। वैभव नहीं है, परन्तु तृप्ति है। अब उन्हे सुख की खोज नहीं करनी पड़ती।

प्रतीक्षा

१

वह एक स्वप्न था। नदी-तट की निर्जनता थी। संध्या मुस्करा रही थी। उसकी गोद में बैठा हुआ मदन स्वप्नों पर सोने की कूची फेर रहा था। इतना ही उसका आकर्षक परिचय था। वह वहाँ बैठकर कुछ पंक्तियाँ लिखता और पास ही के एक लता-भवन से, संसार की दृष्टि से छिपकर, अस्फुट शब्दों में उन्हें गाया करता था।

इसी गाने पर सुन्दरी एक दिन मुस्करा कर चली गई थी। उसकी आँखों में गर्व था और चाल में मादकता।

मदन ने सुदरी के इस भाव को देखा, सराहा भी। किंतु समझ नहीं सका। उसकी कल्पना का संसार नए रूप से नींव रखने लगा। परन्तु लालसाओं पर उसका अधिकार नहीं था। वह दरिद्र था और सुन्दरी राजकन्या।

एक दिन सुन पड़ा, मदन को राज्य की सीमा के बाहर निकल जाने की आज्ञा हुई है। अपराध का पता नहीं चला।

२

राजकुमारी को मदन का कुछ भी ध्यान न रहा। मदन चला गया। प्रेमोन्माद और वेदना बढ़ने लगी। कविता की गति बदलने लगी। भावों का उत्तरोत्तर विकास होने लगा। घायल हृदय के उच्छ्वास और भी गर्म हो चले।

सरिता-तट पर निर्जन वन के हृदय से जब प्रतिध्वनि उठती तो उसकी सुरीली तान उसे स्मृति की गोद मे बिठा देती थी। उस समय वह अपनेको भूल जाता था। यही उसका सुख था।

दिन आते और चले जाते। हृदय में एक विचार धारा आती और वह जाती थी, और संसार के तट को एक जोर का धक्का लगाकर संसार की नश्वरता की कुछ मिट्टी बहा देती थी।

अब उसके बाल सफेद होने लगे। शरीर शिथिल हो चला।

३

राजकुमारी तारा का जीवन शान्तिनगर के राजा के प्रेम-सुख में बीतता रहा।

दो युग बीत गए!

अब राजकुमारी एक वह रंगस्थली है, जिसके यौवन का नाटक समाप्तप्राय और एक विगत गौरव की छाया-स्मृति है। और, मदन अब संसार की वह संपत्ति है, जो नित्य नवीन रहती है—वह कवि है, जो विश्व के हृदय में सदा ही सजीव और सचेष्ट है।

अब उसे और कोई आशा नहीं थी। केवल जन्मभूमि की स्मृति से उसका आकर्षण कभी-कभी असह्य हो उठता था। वह चाहता था, उस प्राप्ति के हृदय पर अपनी पूर्णता को खाली करे, कुछ शांति पावे।

शांतिनगर के राजा का निमन्त्रण आया।

कवि उस नगर में गया। चारों ओर हर्षोल्लास का सागर उमड़ रहा था। तारा तक कवि की प्रशंसा पहुँच चुकी थी।

कवि ने इतने दिन संसार के रहस्यों के गीत गाए थे। छिपी सौन्दर्य-श्री की तलाश थी।

उसकी आँखों मे तेज था। उसका व्यक्तित्व अजेय था। अतीत की व्याकुलता और निराशा की चिरशून्यता झलक रही थी।

उस दिन महाराज की ओर से सभा हुई। मंच पर कितनी ही आँखों ने उसे देखा। बार-बार अतृप्ति की उत्सुकता में भर-भर कर

कितने ही अपरिचित हृदय उसके परिचय से प्रसन्न थे। उसकी वाणी सभा में विजयी हुई। लोगों ने कहा—यह देवता है।

४

कवि एक दिन राजा के बाग से झील के किनारे टहल रहा था। पार की घनी हरियाली जैसे चुपचाप उससे कुछ कहना चाहती हो, यह समझकर उसके निराश प्राणों में सजीवता आ जाती। वह गाता, झील की लहरें उस पर ताल दे-देकर उसका समर्थन करतीं! वह सुनता, समग्र वायु-मंडल में उसके गीत गूँजते रहते।

उसकी आँखें पीछे फिरीं। उसने देखा, राजमहल में एक स्त्री अपने बच्चों को खेला रही है। देखा, उसके यौवन की समाधि पर लावण्य आज भी उसका सहचर है। बार-बार देखा। स्मृति ने उससे कहा—हाँ, यह वही राजकुमारी तारा है।

वह बड़े स्नेह से बच्चों को खेला रही थी। उनकी हँसी के साथ वह भी हँस पड़ती थी। कवि ने देखा, अब अधरों पर ऊषा की लाली नहीं है; वहाँ हैं अँधेरी संध्या के प्रकाश की धुँधली रेखा! उसने मन-ही-मन कहा—हाय, मैं इसके अरुण यौवन के गीत न गा सका!

५

एक दिन तारा के हृदय में भी कवि के दर्शन की श्रद्धा उत्पन्न हुई। बच्चों के साथ वह कवि की कुटी पर पहुँची। देखते ही कवि उसे पूर्व-परिचित-सा जान पड़ा। उसने आँखें नीची कर लीं, कवि को प्रणाम किया।

तारा ने पूछा—आपका जन्मस्थान?

प्रेमनगर।

प्रेमनगर?—तारा सोचने लगी।

कवि के मस्तक पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। वह थोड़ी देर के लिए चुप हो गया।

तारा स्मृति सागर में डूब गई। उसके हृदय पर धीरे-धीरे पूर्व-काल की घटनाओं की छाया पड़ने लगी। उसने मन-ही-मन कहा—यह मदन तो नहीं है? सारा वायु-मंडल घहरा उठा—यह मदन तो नहीं है?

कवि की दृष्टि में तारा का प्रेम अब कपोलों पर सूखे आँसू की तरह दिखलाई देता था।

तारा ने धीमे स्वर में कहा—उस समय मैं आपको नहीं पहचान सकी थी। आप के गीतों का मूल्य नहीं समझ सकी थी। क्या अब आप नहीं गाते?

अब सरिता की धारा में वेग नहीं है।

कवि ने एक बार आकाश की ओर देखा—धुँधली संध्या थी।

वंशीवाला

अब वंशी न बजाऊँगा—यह उसने प्रतिज्ञा कर ली थी। पहले वह बड़ी कुशलता से वंशी बजा लेता था। उसके बजाने में उसकी आँखों के सामने कल्पना का संसार दीखता था। उस ध्वनि में दर्द था, उसमें सम्मोहन था। वंशी बजाकर ही शायद वह अपनी आंतरिक पीड़ा को शांत करता था।

उस घटना को भी ५ वर्ष हो गये थे। वह निर्जन स्थान में इधर-उधर शांति के लिए भटकता रहा।

उसने सोचा कि यह पीड़ा वंशी के कारण ही उत्पन्न होती है, अब वह भी नहीं बजाऊँगा।

घर छूट गया था। बहुत समय चला गया। उसके घुँघराले बालों ने बढ़कर जटा का रूप धारण कर लिया था। उसकी जादू भरी सफेद आँखों ने धँसकर अपने चारों तरफ काली रेखाएँ बना ली थीं।

वह योगी नहीं था, महात्मा नहीं था और दार्शनिक भी नहीं था। फिर क्या था ? हाँ, उसे प्रेम का उन्माद था। ससार की घटनाओं से वह हताश हो गया था। प्रेम के कलक का टीका उसके मस्तक पर लग चुका था। ससार ने उसकी ओर चकित होकर देखा था। उसी दिन उसे अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ। वह रोया, फूटकर रोया, और जी भर कर रोया। उस रोने में बडा स्वाद था।

उसी दिन से वह अपना घर छोडकर चला गया था। तभी से वंशी बजाने लगा। वशी उसके प्रेम का गान करती थी, और उसकी प्रति-ध्वनि उसे सांत्वना देती थी।

वशी उसकी दिनचर्या को समाप्त करती थी; किंतु आधी रात का चन्द्रमडल और तारे उसे प्रेमपथ को भूल जाने का आदेश दिया करते थे।

उस दिन ऊषा की लाली के साथ ही उसके प्रियतम का उसे दर्शन हुआ था! वह अवाक रह गया, भयभीत हो उठा। वह उसे न देखने की चेष्टा करने लगा। किन्तु आँखों को वश मे न कर सका। वह मचल गया। हृदय की व्याकुलता के कारण वंशी की ध्वनि बेसुरी होने लगी। वह उठा और चला गया। अपने प्रणय पात्र को भूल जाने के लिए ही उसने वशी न बजाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। वंशी की ध्वनि के साथ उसके सम्मुख जो प्रतिमा प्रत्यक्ष हो जाती थी, वह लुप्त होने लगी।

उसने समझा, अब मैं विजयी हुआ।

* * * *

उस दिन चन्द्रदेव को क्रीडा करते देखकर उसने मन ही-मन कहा—क्या अब मैं हृदयहीन हो गया ? क्या वास्तव मे हृदय से प्रेम-की भीषण लहरे चली गईं ? उस घटना का रेखा-चित्र भी अब मेरी आँखों के सामने नहीं आता। तब तो मेरे पास कुछ भी न रहा।

वह उठा। गम्भीर होकर विचार करने लगा। उसने रोने की चेष्टा की, किंतु रो न सका। फिर गाने का विचार किया, और कुछ गुनगुनाने लगा। वंशी बजाने की कामना उसके हृदय में प्रबल हो उठी।

दूसरे दिन वह नगर की ओर लौटा।

फिर उसने वंशी ली और उसे बजाने लगा। सदा की भाँति वंशी बजाने का उसका नियम हो गया। वंशी की स्वर-लहरी ने उसके मर्म-स्थल पर सोए हुए प्रेम को फिर से जगाया। वह उन्मत्त हो चला। अपने भूले हुए प्रियतम को देखने के लिए उसकी आँखे चञ्चल हो उठीं।

वंशी के साथ-साथ उसकी अन्तर-वीणा बजने लगी। उसी राग में मस्त होकर वह अपने प्रणय-पात्र को एक बार फिर देखने के लिए चल पड़ा।

वह आया। बहुत समय व्यतीत हो गया था। वही घर था। उसने ध्यान से देखा। बहुत देर तक देखता रहा। किन्तु कुछ दिखलाई न दिया। वह चुपचाप वहीं बैठकर वंशी बजाने लगा। खूब बजाया। बहुत-से लोग सुनने के लिए एकत्र हो गए थे, किन्तु उस घर में कोई न था। किसी ने उसे योगी समझकर नमस्कार किया, किसी ने साधु समझकर भक्ति प्रकट की। किन्तु उसे समझनेवाला कोई न था, वह केवल वंशी ही थी।

निराश होकर उसने पूछा—इस घर में अब कोई नहीं रहता?

किसी ने उत्तर दिया—इस घर के निवासी अब दूसरे प्रांत में चले गये हैं।

वंशीवाले के जीवन के रहस्य को कोई समझ न सका। वह टहलता हुआ आगे बढ़ा। कुछ दूर चला आया, गंगातट पर उसने एक टूटा हुआ शिवाला देखा। उस दिन से वह उसी शिवाले मे निवास करने लगा।

सावन-भादों की निचाट रात में अब भी उसकी वंशी कभी-कभी सुनाई पड़ती है!

दीप-दान

चाची विधवा थीं। धर्म-कर्म में उनकी बडी श्रद्धा थी। दिन-रात ईश्वर में लीन रहतीं। पडोस के लड़के उन्हे 'चाची' ही कहा करते थे। वह उन्हे कृष्ण भगवान् की कहानी सुनाया करती, प्रसाद देतीं; इसलिये सब उन्हे घेरे रहते।

अन्नपूर्णा पर चाची का बड़ा स्नेह था। उनके घर का बहुत-सा काम वह कर जाया करती। प्रकाश भी स्कूल से पढ़कर उनके यहाँ खेलने आया करता। वहीं सायङ्काल में बालक-बालिकाओं का अच्छा जमाव होता था। उनके कोई सतान न थी, इसलिये सब बालक उन्हीं के थे। यह बाल-लीला देखकर भगवान् का स्मरण करती थीं।

कार्तिक में चाची एक मास नित्य गंगा-स्नान करने जाया करती थीं। अन्नपूर्णा और प्रकाश भी कभी-कभी उनके साथ जाते थे। उनके उठने के पहले ही, तीन बजे शिवमंदिर के घटे की ध्वनि सुनकर, प्रकाश को अन्नपूर्णा उठा देती और कहती—जल्दी उठो, नहीं तो चाची चली जाएँगी।

स्नान करने के बाद चाची दीप-दान करती थीं। प्रकाश और अन्न पूर्णा भी दीये जलाकर गङ्गा मे प्रवाहित करते थे, और अपने-अपने दीपक पर कुछ चिह्न लगाकर उसे अन्त तक देखा करते थे।

प्रकाश ने कहा—देखो अनू, मेरा दीपक आगे चला गया, वह देखो, तुम्हारा दीपक डूब रहा है।

गङ्गाजी की लहरें दीपकों से किलोल कर रही थीं।

अनू कहती—लो, तुम्हारा दीपक भी बुझ रहा है। वह देखो, कितनी दूर चला गया!

प्रकाश देखता ही रहा। उसका दीपक आँखों से ओझल हो गया था।

चाची यह दृश्य देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होती थीं और दोनों भाई-बहन को साथ लेकर घर लौट आती थीं।

२

दस वर्ष समाप्त हो गये थे।

पड़ोस के कई मकान गिरकर अब खंडहर हो गए थे। अन्नपूर्णा का विवाह हुआ, फिर प्रकाश का भी विवाह हुआ। सब संसार की चर्खी पर झूल रहे थे।

प्रकाश ने अब विद्वान् और गृहस्थ होकर संसार में प्रवेश किया था। प्रकाश की स्त्री बड़ी सुन्दरी और सुशीला थी। कई वर्षों के बाद एक पुत्र भी हुआ।

बड़े आनद से दिन कट रहे थे।

अनू भी साल छ महीने में आती और कुछ दिनों के लिये मेहमान होकर चली जाती थी।

दैव की लीला! प्रकाश बीमार पड़ा, फिर रोगशय्या से न उठा। भरी जवानी मे चल बसा! सब उसके लिये आँसू बहाते।

वह सरल था, नम्र था और होनहार था; इसलिये उसका अभाव खटकता था।

३

बहुत समय बीत गया।

अन्नपूर्णा घर आई थी। कार्तिक मास था। चाची अब बहुत

वृद्धा हो गई थीं; पर गगास्नान करने जाया करती थीं। एक दिन अन्नपूर्णा उनके घर गई थी। विगत जीवन का वार्त्तालाप होता रहा।

चाची ने कहा—अनू, तेरे साथ स्नान किए हुए कितने वर्ष हो गए—तुझे याद है?

अनू ने आह भरते हुए कहा—वे दिन चाची, क्या भूलेंगे? कितना मधुर समय था!

अच्छा, चल एक दिन मेरे साथ फिर स्नान तो कर ले। कल एकादशी है।—चाची ने आश्वासन देते हुए कहा।

दूसरे दिन अन्नपूर्णा अपने भाई के लड़के अरुण को लेकर चाची के साथ स्नान करने गई। घाट अब भी वैसा ही था। आकाश-दीपक अब भी उसी तरह टॅगे थे। गगातट पर एक स्त्री दीप-दान के लिए सजाया हुआ दीपक बेच रही थी।

चाची ने सदा की भॉति दीप-दान के लिये दीपक ले लिया। बालक अरुण आश्चर्य से पूछने लगा—यह क्या है चाची?

'दीप-दान के लिये दीपक है बेटा!'

'क्या होगा?'

'चलो देख लेना, गङ्गाजी में बहाया जायगा।'

अन्नपूर्णा मूर्त्ति के समान खड़ी थी। किसी पीड़ा ने कुछ देर के लिये उसके हृदय मे डेरा डाला। उसका दम घुटने लगा। बहुत साहस करके उसने भी एक दीपक लेते हुए कहा—चाची, मैं भी दीप-दान करूँगी।

स्नान करने के पश्चात् अनू ने दीपक का प्रवाह किया। अरुण कौतूहल से देख रहा था।

तारे आकाश से एक-एक कर नष्ट हो रहे थे। दीपक बडे वेग से बहे जा रहे थे। अनू चुप थी, उसे दीपक की मलिन ज्योति से

दिखलाई दिया—जैसे प्रकाश का छाया-चित्र आकाश की तरफ उठ रहा है।

सहसा अरुण ने आश्चर्य से कहा—बुआ, वह देखो, तुम्हारा दीपक डूब रहा है।

अनू ने देखा, दीपक दूर श्मशान के सामने तक पहुँच गया था और एक लहर ने दीपक को छिपा लिया।

दीपक का मन्द प्रकाश श्मशान की अग्नि की लपटों में विलीन हो गया।

अन्नपूर्णा को चारों ओर प्रकाश-ही-प्रकाश दिखाई दिया।

समाधि

बहुत दिनों के बाद, वह संन्यासी लौटा था। एक समाधि की छाया मे खड़ा होकर वह विश्राम लेने लगा। वह बहुत थका हुआ था।

वह उसीकी प्रतिमा थी। उसने देखा, संगमर्मर की वह समाधि जैसे हँसने लगी। वह भावों की उद्विग्नता मे, प्रतिमा को संबोधन कर, कहने लगा—तुम पाषाण हो, तुम कैलास की प्रतिमा बन गए हो, तुम्हारे रूप और बाहरी आवरण में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु तुम्हारे पास हृदय नहीं! तुम रोना नहीं जानते, तुम अट्टहास नहीं कर सकते, तुम्हे किसी की प्रसन्नता या पीड़ा का अनुभव नहीं!! संसार के सब सुख हमसे थककर चले जाते थे, उन्हे स्थिर न कर सका। इस शरीर पर बड़ा ममत्व था। इसीके स्मृति-स्वरूप, अपने मोह को स्थिर रखने

के लिये, तुम्हे बनवाया; परन्तु तुम शरीर-ही-शरीर रहे ! तुम्हारे भीतर स्पन्दन नहीं, उच्छ्वास नहीं; तुम्हे आँसू बहाने नहीं आता !

किन्तु प्रतिमा उसी तरह मौन थी।

सन्यासी उसी दिन से पर्यटन छोड़कर, अपनी ही समाधि का पुजारी बन गया। उसके मन में यह बात समा गई कि देखूँ, कोई भी मेरी समाधि पर आकर आँसू बहाता है या नहीं ?

सन्यासी के वहाँ रहने से, गाँव के लोग उसे कोई शक्तिशाली देवता समझ कर, कभी-कभी उस प्रतिमा की पूजा भेंट करने आने लगे। वन के फल-फूल उसकी भूख शात किया करते। किसी तरह उसका जीवन-निर्वाह होने लगा। फिर भी, बहुधा, मनुष्यों की दृष्टि से वह अपने को बचाता था। किसी परिचित को देखता, तो पत्तों की घनी हरियाली मे छिप जाता था।

बहुत दिन व्यतीत हो गए।

२

लता उसी गाँव की लड़की थी। उसका ब्याह नगर मे एक सुशिक्षित युवक से हो गया था। किन्तु, वह प्रायः बीमार ही रहा करती। उसकी माँ ने उसे बुला भेजा था, समाधि की पूजा करने के लिये। क्योंकि उस योगी की विभूति से कल्याण-प्राप्ति में उसे दृढ़ विश्वास था।

उस दिन लता, अपनी एक सखी और माता के साथ, माधव-वन के समीप, समाधि के पास आई। बहुत दिनों पर लता ने देखा कि कैलास की मूर्ति जैसे उसे प्रत्यक्ष दिखलाई दी। वह बड़े ध्यान से देखने लगी। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े।

लता की सखी कुन्ती कुछ भी न समझ सकी। उसने पूछा—लता कैसी तबीयत है ? मुख उदास क्यों है ?

लता की माँ उस समय समाधि की पूजा कर रही थी।

कुन्ती ने बार-बार जिद करके पूछा—लता, इतना शिथिल क्यों हो रही हो? कुछ बोलो।

उसने एक ठण्डी साँस लेकर कहा—कैलास, इस प्रांत का एक धनी व्यक्ति था। सुखों की खोज में, विलास की लालसा में, वह सदैव अतृप्त रहा। यही उसकी फुलवारी थी। मैं भी एक दिन उसमें फूल चुनने आई, मैं तब अपने को बालिका ही समझती थी। विलासी कैलास एकान्त पाकर, मुझे रोककर, कहने लगा—लता, तुम तो अब सयानी हो चली हो!

मैं भयभीत हुई, क्योंकि कैलास के नाम से गाँव की स्त्रियों में बड़ी सनसनी फैल जाती थी। मैंने कहा—आप मुझसे न बोलिए; मैं शपथ खाती हूँ। आपकी फुलवारी में न आऊँगी।

कैलास ने कहा—क्या मैं पिशाच हूँ? तुम इतना डरती क्यों हो?

मैं अज्ञान थी। मैंने कहा—तुम इतने बदनाम क्यों हो?

वह सामने घुटनों के बल बैठकर कहने लगा—मैं आज से सच्चरित्र होने का प्रण करता हूँ, यदि तुम मुझसे विवाह करने की प्रतिज्ञा करो। लता, यदि तुम्हारे ऐसा निर्मल-हृदय मुझे मिला होता, तो मैं इतना घृणित न होता। मैं बड़ा अभागा हूँ। आह! मेरे लिये संसार में कौन आँसू बहावेगा? कोई नहीं?

न जाने क्यों मैंने उसे उत्तर दिया—तुम किसी के लिये आँसू नहीं बहाते, दूसरों के आँसू पर हँसते हो, तो फिर तुम्हारे लिए कौन आँसू बहावेगा?

मैंने देखा, कैलास अचानक किसी निगूढ विचार-सागर में डूब गया है। थोड़ी देर बाद, वह पश्चात्ताप के आवेग मे कहने लगा—लता, तुमने मेरी आँखें खोल दी! क्या वास्तव में एक दिन इस जीवन

का अन्त हो जायगा ? ओह, इस समाज में मृत्यु के पश्चात् कोई चिह्न भी तो नहीं रह जाता। यहाँ तो लोग जलाकर राख कर देते हैं। फिर संसार में आने का रहस्य क्या है ? मैं रहस्य को खोजूँगा। जाओ लता, मुझे क्षमा करो।

कुन्ती कौतूहल से सुन रही थी।

इसके बाद मैंने सुना कि कैलास का रहन-सहन बदल गया है। उसे संसार के प्रति निराशा होते हुए भी एक कौतूहल-सा था। मैं उसे दूर से देखती। वह बहुत बदल गया था। जैसे उसके हृदय में वासना और त्याग का द्वंद्व मचा हुआ था।

२

दूर देशों से शिल्प-कला के कुशल कारीगर बुलाए गए। कैलास के इसी विलास-कानन में उसके स्मृति-चिह्न के लिए यहीं उसकी प्रतिमा स्थापित हुई। विलास से बचा हुआ सारा धन उसने इसमे लगा दिया; और फिर तीर्थ-यात्रा का निश्चय किया। यह समाचार सुनकर, सब मित्र, सम्बन्धी और परिचित उससे मिलने के लिये गए। पर, मैं न गई। वही बात आज सहसा स्मरण हो आई थी।

कुन्ती विचार में लीन हो गई थी। उसने रहस्यमय दृष्टि से लता की ओर देखते हुए कहा—उसके सम्बन्ध मे मुझे बहुत थोड़ा मालूम था, मेरा विवाह हो गया था, और मैं यहाँ से चली गई थी।

लता की आँखे डबडबा गई थीं।

कुंती ने उसकी पीठ थपथपा कर कहा—लता, तुमने भूल की। तुम्हारे हृदय में उसके प्रति घृणा न थी, वह प्रेम था।

लता नतशिर हो गई।

इतने में लता की मा पूजा और प्रार्थना करके उसे पुकारने लगी।

माता ने कहा—लता, योगी तो आज नहीं है, तुझे आशीर्वाद कौन देगा ? आओ चलें, फिर किसी दूसरे दिन आवेंगे ।

योगी झाड़ी में बैठा हुआ ध्यान से यह दृश्य देख रहा था, और उनकी सब बातें सुन रहा था। उसकी अभिलाषा हुई कि इस बार अपने को प्रकट कर दे। उसने सोचा, यह कैसा रहस्य है कि जीवन के प्रत्यक्ष मे जो नहीं आता, वह बाद में आकर आँसू बहाता है ।

अब वह अपनेको न रोक सका, और सामने आकर खड़ा हो गया। सबने भक्ति-सहित नमस्कार किया। योगी ने कहा—लता, तुम्हारे उस दिन न आने से मेरी यात्रा खण्डित रही, और मुझे लौटकर फिर इस समाधि पर आना पड़ा। तुम सुखी रहो। मैं अब कभी न लौटने के लिये फिर जाता हूँ ।

आश्चर्य और कौतूहल से लता की माँ के हाथ से पूजा के सामान छूट पड़े। उसके मुँह से निकल पड़ा—अरे ! यह तुम्हीं हो कैलास !!

करुणा

एक दृश्य—

अन्धकार का चारों तरफ राज्य था। एक पहर रात ढल चुकी थी। आकाश के अञ्चल में तारे जगमगा रहे थे। चन्द्रदेव दूसरे देश में भ्रमण कर रहे थे ! उस पतली-सी गली में कोई किसी को देख न सकता था, कभी-कभी तो ऐसा हो जाता कि अन्धकार के कारण एक एक मनुष्य दूसरे से टकरा जाता। कूड़ा जगह-जगह फैला था, सफाई कुछ भी न थी। उसी गली में एक पुराना मकान था। देखने से यह

ज्ञात होता था कि अबकी वर्षा-ऋतु में यह मकान खड़ा न रह सकेगा। उसी मकान की एक कोठरी मे एक दीपक जल रहा था। उसमें कुछ सामान भी नहीं दिखाई देता था, केवल कुछ मिट्टी के बरतन पडे थे, और एक रोगिणी शय्या पर पड़ी थी। रोग के कारण उसका शरीर पीला हो गया था। शरीर की हड्डी-हड्डी निकल आई थी। उस दीपक के मद-मद प्रकाश मे उस रोगिणी की गढ़े में घॅसी हुई ऑखें डबडबा रही थीं।

एक नन्हा-सा बच्चा उसके वक्षस्थल में चिपका हुआ दूध पी रहा था। रोगिणी बार-बार उसकी तरफ देखती, उसके नेत्रों से आँसू की धारा बह रही थी। वे अश्रु-कण अपने मार्ग से खिसककर बच्चे के गाल पर टपक रहे थे। वह नन्हा-सा बच्चा अपनी माँ की तरफ देख रहा था, और माता उसकी तरफ देख रही थी। बच्चे ने अपने छोटे-छोटे हाथों को ऊपर उठाते हुए कहा—"म...मॉ...ऑ!" माता ने उसे चूम लिया। उसके सिर पर हाथ थपथपाते हुए उसने कहा—बेटा, सो जाओ। रोगिणी की दशा पहले से अब कुछ अच्छी हो चली थी।

परिचय—

वह एक वेश्या थी, पतिता थी और समाज से निकाली हुई अभागिनी थी। उसकी रूप की दूकान थी और दूकान भी ऐसी, जो न चलती हो। कुछ धन भी एकत्र न कर सकी। रूप भी नष्ट हो गया। दूकान टूट गई। एक बालक हुआ, तभी से वह बीमार पड़ी। कई मास तक वह बीमार पड़ी। कई मास तक रोगग्रस्त थी। पेट के लिये घर का सामान बिक चुका था। ग्राहक भी नहीं आते थे।

और सहायक भी कोई न था। फिर भी दुखिया रो-रोकर अपने दिन काटती थी। उसे केवल अपने ही तन की चिंता न थी, उसको एक बालक भी था। सबसे अधिक चिंता उसे अपने बच्चे की होती। उसे

दूध तक न मिलता था। दुखिया के स्तन में इतना दूध होता नहीं था, जिससे उसका पालन होता। उस दुखिया का नाम था—करुणा!

कई दिन बाद—

करुणा ने देखा, अब बच्चे का जीवन-निर्वाह करना उसके लिये बड़ा कठिन है। इस तरह तो एक दिन उसकी मृत्यु हो जायगी। उसने अपने मन में कहा—यदि मैं अपना बच्चा किसी को दे दूँ, और वह इसे अच्छी तरह रखे ......किन्तु एक वेश्या के बच्चे को कौन रखेगा—लोग उससे घृणा करेंगे! अन्त में उसने निश्चय किया कि रात्रि के समय बालक को मार्ग मे रख दूँगी। कोई-न-कोई उसे उठा ले जायगा, और उसका पालन-पोषण करेगा। उसने मोह को अपने हृदय से हटा दिया।

अभी दो घड़ी रात बाकी थी। करुणा उठी, बालक को उसने गोद में ले लिया। फटे वस्त्रों से उसने उसे लपेट लिया और घर से वह निकल पड़ी। बार-बार घूम कर देख रही थी कि उसे कोई देख तो नहीं रहा है। उसके हाथ में बालक के खेलने का एक शीशे का खिलौना था। बालक का बोझ वह रुग्णावस्था के कारण सँभाल न सकती थी। चलते-चलते वह एक सड़क पर आई। अभी पूर्व दिशा में लाली नहीं छाई थी, फिर भी सवेरा होने ही वाला था।

करुणा ने एक स्थान पर बालक को रख दिया। उस समय वह अश्रुपात कर रही थी। वह सोचती, अब बच्चे को इस जीवन मे देख सकूँगी या नहीं। बार-बार वह बच्चे की तरफ देखती। वसन्त का पवन आकर उसको स्पर्श करता।

उसकी आत्मा कहती—जो कुछ तुम्हारे पास है, वायु के साथ उसे लुटा दो। उसने हृदय को कठोर किया। कष्ट सहते-सहते वह कठोर हो चली थी। किन्तु फिर भी वह माता का हृदय था।

करुणा ने बालक को चूम लिया। उसने कहा—मोहन, आज अन्तिम बिदाई है, अब तुम अपनी माँ से अलग हो रहे हो। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे। यह कहती हुई वह उन्मादिनी की तरह चली जा रही थी। मोहन के रोने की ध्वनि उसके कानों में गूँज रही थी। उसके हाथ में मोहन के खेलने का एक खिलौना था; किन्तु खेलनेवाला न था। वह अपने घर की तरफ न जाकर कहीं दूसरी ही तरफ चली गई।

अनाथ मोहन—

मन्दिर में घन्टा बज रहा था। स्वर्णमयी ऊषा का क्षितिज मे आगमन हुआ था। गंगा-स्नान करने के लिये लोग घर से निकल रहे थे। एक रमणी भी अपनी दासी के साथ स्नान करने के लिये जा रही थी।

हाय! यह क्या! यह बच्चा यहाँ किसका रो रहा है?—रमणी ने आश्चर्य से कहा। दासी ने जाकर देखा, उसने उसे अपनी गोद मे उठा लिया, और कहा—बहू जी, बच्चा तो बडा सुन्दर है, किसीने यहाँ रख दिया है। हाय, उसे जरा भी मोह न था। बहूजी ने कहा—अच्छा, इसे घर ले चल।

बहूजी की जवानी ढल चुकी थी। संतान कोई उत्पन्न नहीं हुई थी। पति बडे व्यवसायी थे, घर में लक्ष्मी का निवास था। वह बालक घर मे अब सबका खिलौना हो गया। बडे लाड-प्यार मे उसके दिन बीतने लगे। बहूजी को ही वह अपनी माता समझता था।

माताकी व्यथा—

स्मृति कॉंटों की शय्या है। करुणा कभी रोती है, कभी हॅसती है। रोती है वह मोहन के लिये, और हॅसती है अपने जीवन पर। पथ पथ में वह फिरती है। कितनी रजनी उसकी सड़कों पर कटी हैं। अब न उसका घर था, न कोई साथी। सब कुछ छोड चुकी थी, और छोड़ चुकी थी अपने जीवन की अमूल्य सपत्ति मोहन को! वह विकल हो इधर-उधर

फिरा करती। पगली समझकर कोई उसे खाने को दो रोटियाँ दे देता। इसी तरह अपना जीवन काटती रही।

करुणा जब किसी बालक को खेलते हुए देखती, तो उसे मोहन की स्मृति आ जाती। वह बार-बार उस खिलौने को देखकर रोती; क्योंकि मोहन की स्मृति के लिये केवल वह खिलौना ही उसके पास था। वह उसे हृदय से लगा लेती और समझती, यही मेरा मोहन है। उसका दिमाग़ खराब हो चुका था। उसे न अपने भोजन की चिंता थी और न कपड़े की। यदि कोई दे देता, तो उसे वह ले लेती। मार्ग में चलता हुआ कोई उसके सामने एक पैसा फेंक देता, तो वह घृणा से उसे फेंक देती। लोग समझते, यह पगली है।

एक दिन करुणा को देखकर एक आदमी ने कहा—अरे यह तो वही वेश्या है! दूसरे ने कहा—जैसा किया था, उसीका फल भोग रही है—बुरे कर्म का बुरा परिणाम?

किन्तु करुणा के साथ कोई सहानुभूति प्रकट करने वाला न था। समाज उसका निरादर करता था। वह विकल होकर कहती—अभागे प्राण अब भी नहीं निकलते। हाय मैं क्या करूँ? मोहन! प्यारे मोहन!! आ जा मेरी गोद में!

दो वर्ष बाद—

वर्षा-ऋतु के काले बादल अब सफेद और पतले हो चले थे। सफेद बादल आकाश में टकरा रहे थे। सूर्यदेव उन बादलों पर चित्रकारी कर रहे थे।

एक बड़ा सुन्दर-सा मकान था। उस मकान के सामने एक वाटिका थी। एक बालक ने कहा—गिलधाली! ए गिलधाली!! वह तितली मुजे पकल दो।

'क्या करोगे?'

'उसे लखूँगा ।'

'नहीं, वह मर जायगी ।'

'मैं उसे दिला दूँगा ।'

'मैं उसे नहीं पकड़ सकता, वह उड़ जायगी ।'

बालक उसे पकड़ने चला, तितली उड गई। वह उसकी तरफ देखने लगा। फिर वह अपनी रबड की गेंद को उछाल-उछालकर खेलने लगा।

एक भिखारिन बहुत देर से वहाँ खड़ी देख रही थी। आज भूले-भटके सहसा वह इधर आ गई थी। वह चुपचाप देख रही थी—आह, यह तो मेरे मोहन की तरह है! आँखें वैसी ही हैं—रङ्ग भी कुछ सॉवला-सा है। गोल मुँह भी है। एक दिन चारपाई से गिरने पर उसको जो चोट आई थी, उसका चिह्न अब तक बना है। अवस्था भी इसकी उतनी ही है। एक वर्ष का था—दो वर्ष बीते। तीन वर्ष का तो यह बालक भी मालूम पड़ता है। यही है मेरा मोहन।

इन्हीं वाक्यों को करुणा भुन-भुना रही थी। प्रेम से उसका हृदय उमड़ रहा था। मोती का हार टूटा गया था, दाने एक-एक करके भूमि पर गिर रहे थे।

गेंद उछलते-उछलते करुणा के पास आ गया। बालक उसे लेने के लिये दौडा। वह उसकी तरफ देख रही थी। उसने धीरे से कहा—मोहन, भूल गये क्या?

मोहन ने कहा—तुम भीक माँगती हो? क्या पैछा ला दूँ?

'नहीं?'

'तब क्या?'

'अपने बच्चे को खोजती हूँ।'

'वह कहाँ है?'

'तुम हो।'

मोहन ने हँस दिया। उसने कहा—मैं अपनी अम्मा का बच्चा हूँ, तुम्हारा नहीं।

करुणा ने अपने वक्षस्थल में छिपा एक खिलौना निकालकर कहा–लो, यह तुम्हारा खिलौना है। वह अपने को अब सँभाल न सकी। मोहन को गोद मे लेकर रोने लगी। उधर नौकर ने जब देखा कि एक भिखारिन की गोद मे मोहन है, तो वह भिखारिन के सामने आ गया और कहा—दूर हो यहाँ से।

यह कहते हुए बालक को उसने उठा लिया।

करुणा चुप हो गई, वह देखने लगी। उसने अपने मन मे विचार किया कि इस समय यदि मैं कहती हूँ कि यह मेरा बालक है, तो कोई विश्वास ही न करेगा, और यदि विश्वास हो भी गया, तो मोहन सबकी दृष्टि में गिर जायगा। लोग समझेंगे, एक वेश्या—एक भिखारिन—का पुत्र है। उसका जीवन नष्ट हो जायगा।

वह विकल होकर रोने लगी।

नौकर गिरधारी ने पूछा—क्यों रोती है? भूखी है क्या?—ऊपर से बहूजी ने कहा—अरे उसे कुछ खाने को दे दो।

परन्तु करुणा वहाँ से उठी। उसके पास मोहन की स्मृति के लिये जो खिलौन था, वह भी उसने वहीं छोड़ दिया। वह दौड़ती हुई चली जा रही थी। आज उसके मुख पर करुणा और संतोष था।

गिरधारी ने कहा—बहूजी! यह तो पागल हो गई है।

उस दिन से फिर करुणा को किसीने नहीं देखा। न जाने कहाँ चली गई!

रधिया

पूस का जाड़ा था। चारों ओर अन्धकार! कुहरे के धूमिल परदे में आकाश छिपा हुआ था। गंगा के उस पार बादलों का एक देश दिखलाई देता। चन्द्रदेव रजनी के स्नेहाञ्चल में दुबककर सो रहे थे।

गंगा-तट पर वृक्षों के नीचे सैकड़ों भिखारी ठिठुरकर गठरी बने हुए पड़े थे। उनमें कोई लँगड़ा था, कोई लूला। कोई अन्धा था तो कोई एकदम हाथ-पाँव से हीन। कोई सरदी से खाँस रहा था और कोई दमे से बेहाल था। कोई ज्वराक्रान्त था और कोई क्षुधार्त। कहीं से 'आह-आह' सुनाई पड़ती थी, तो कहीं से चीत्कार और हाहाकार। यहाँ था दुःखमय संसार के सच्चे धनियों का दल!

तट के ऊपर अट्टालिकाएँ आकाश छू रही थीं, जिनमें सुखमय संसार के धनियों का दल आनन्द कर रहा था। कहीं से सितार की मीठी झंकार आ रही थी, तो कहीं से पियानो और हारमोनियम की सुरीली तान। कहीं-कहीं से वंशी की जादू-भरी फूँक श्रोताओं के रोम-रोम में गुदगुदी पैदा कर देती थी। इन वाद्य-यन्त्रों की स्वर-लहरी में किसी के सुखमय अतीत का सङ्गीत तरंगित हो रहा था, तो किसीकी दर्द-भरी आहें क्रन्दन कर रही थीं।

वहीं एक वृद्धा स्त्री पेड़ के नीचे एक छोटी-सी बालिका के साथ विश्राम कर रही थी। चिथड़े ही उसके ओढ़ने और बिछौने थे। वृद्धा अन्धी थी, बालिका पर उसकी बड़ी ममता थी—वही उसके जीवन की 'हीरा-मोती' थी।

वृद्धा ने कहा—रधिया, मुझे नींद नहीं आती क्या ? जाड़ा लगता है; आ मेरे कलेजे से लगकर सो जा।

रधिया बोली—नहीं नानी ! जाड़ा तो नहीं लगता। एक बात है, आज मुझे चार पैसे एक साथ ही मिल गये थे।

'सो कैसे बच्ची ?'

आज एक राजा गंगा-स्नान करने आए थे। उनके साथ रानी भी थीं। उनकी देह पर नाना प्रकार के रत्न-जटित आभूषण जगमगा रहे थे। उन्हीं के नौकर ने मुझे चार पैसे दिए। अच्छा नानी एक बात बताओगी ?

'क्या बात है वेटी ?'
'रानी को इतना गहना कहाँ से मिला नानी ?'
'उन्हे ईश्वर ने दिया है वेटी।'
'तो ईश्वर हम लोगों को क्यों नहीं देता ?'
'ईश्वर गरीबों को नही देता।'
'क्यों ?'

इसलिये कि फिर तो ससार-भर धनी हो जायगा। तब न गरीब रहेंगे और न दया-परोपकार के पुण्यकर्म ही हो पाएँगे।

रधिया की समझ मे कुछ न आया। वह बार-बार यही सोचती थी कि रानी के हाथ का कड़ा कितना चमकता था।

वृद्धा ने कहा—बेटी, अब सो जा। बहुत रात बीत गई।

२

रधिया जब छः वर्ष की थी, तभी उसकी मा इस कोलाहलमय संसार को छोड़कर चली गई थी। वृद्धा ने बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर उसे पाला-पोसा और इतना बड़ा किया। जब वह भीख माँगने जाती,

तो साथ मे रधिया को भी ले जाती; रधिया अन्धी के हाथ की लकड़ी थी। उसे पाकर बुढिया अपने को बहुत ही सुखी समझती थी।

इधर रधिया भी दिन-पर-दिन बढ़ रही थी।

* * * *

वृद्धा का शरीर जर्जर हो गया था। अब वह भीख माँगने भी न जाती थी—चलने की सामर्थ्य न थी। रधिया जो कुछ माँग कर लाती, उसी में दोनों का निर्वाह होता था। वह बडे प्रेम से नानी को दिनभर की कहानी सुनाती थी। एक बालक को जिस तरह अपने प्यारे खिलौने का मोह होता है, उससे कहीं अधिक रधिया को उस वृद्धा का मोह था।

३

बहुत समय बीत गया।

रधिया अब सयानी हो गई थी।

एक दिन उसने देखा—वृद्धा का शिथिल ककाल ज्वर की भीषण ज्वाला से धधक रहा है। उसके रोम-रोम से चिनगारियाँ निकल रही थी। बेचारी रह-रह कर कराह उठती थी।

रधिया ने कहा—नानी, यह बुखार तो चूल्हे की आँच से भी अधिक तेज होता जा रहा है। अच्छा, जाती हूँ। देखूँ जो दूध के लिये कहीं चार पैसे मिल जायँ।

रधिया दिनभर राह में भटकती रही। उसे कहीं कुछ न मिला।

उसे जो मिलता, कहता—छिः! इतनी बड़ी लड़की होकर भीख माँगती है। ईश्वर ने हाथ-पैर दिए हैं, जा कहीं नौकरी कर ले।

अक्सर लोग दिल्लगी कर बैठते थे।

अन्त मे बेचारी मर्माहत होकर लौट आई। अब उसे भीख माँगने में संकोच होता था।

वृद्धा ने टूटे स्वर में कहा—बेटी, आज क्या मिला ?

कुछ भी न मिला, नानी ! लोग कहते हैं—इतनी बड़ी लड़की होकर भीख माँगती है ! जा नौकरी कर ले।

वृद्धा ने आँखें बन्द करते हुए कहा—हाँ बेटी, तू नौकरी कर। मैं भी जाती हूँ, मेरी नौकरी पूरी हो गई।

कहाँ नानी ?

यहाँ की नौकरी से मन भर गया। वहाँ की नौकरी करने जाती हूँ।

रधिया की समझ में कुछ न आया।

उसने कई बार पूछा—कहाँ नानी ?—किन्तु उसे कोई उत्तर न मिला।

मान का प्रश्न

बचपन खेलता हुआ चला गया। जवानी इठलाती हुई आ रही थी। नस-नस मे यौवन-विद्युत् का सचार हो रहा था। सुभद्रा ने एक बार सुख की अँगड़ाई ली। वह बड़ी मधुर प्रतीत हुई। उसने आँखें खोल कर देखा—प्रकृति मुस्करा रही थी। गम्भीर होकर सुना—प्रेम कुछ संदेश दे रहा था।

दोपहर का समय था। वर्षा हो चुकी थी। शनिवार—बड़ा सुहावना दिन था! वह अपने पति की प्रतीक्षा में थी।

सिद्धेश्वर प्रति शनिवार को आते, रविवार बिताकर चले जाते थे। यही उनका एक नियम-सा हो गया था। गाँव मे घर होने के कारण नित्य शहर जाना उनके लिए कठिन था। वह स्कूल में पढ़ाते थे। उनकी अवस्था पैंतीस वर्ष के लगभग होगी। यह उनका दूसरा विवाह था।

वह मन-ही-मन कुछ विचार कर रही थी। गाडी का समय हो गया था। रसोई घर में भोजन बना रही थी। दिनभर में यही समय उसे एकांत और अवकाश का मिलता था। वह भोजन बनाते समय ही प्रायः अपने हृदय की बातों पर विचार करती। विचार करते-करते वह ऐसी बेसुध हो जाती कि कभी कभी तवे की रोटियाँ जल जाती थीं।

आज उसका हृदय जोश में था। विचार-धाराएँ, समुद्र की उत्ताल तरंगों की भाँति, आकाश से टकराने का प्रयत्न करती हुई लौट आती थीं।

ठीक समय पर सिद्धेश्वर घर आये। संध्या ढल चुकी थी। देखा, घर में सब प्रसन्न हैं। आते ही माता पंखा झलने लगी, छोटा भाई बातें करने लगा। सुभद्रा हाथ-मुँह धोने के लिए पानी और अँगोछा रख गई। छोटी बहू पान बनाने लगी। एक पूरी गृहस्थी उनकी सेवा में प्रस्तुत थी।

उन्होंने ध्यान से देखा—सुभद्रा का घूँघट में छिपा हुआ सौंदर्य—जैसे सुन्दर गुलाब के गुच्छे को आबरवाँ के रूमाल से ढँक दिया हो! देख कर उन्हे अपने जीवन पर तरस आया। उनमें अब वह उत्साह न रहा।

पहले विवाह के समय उनका हृदय ही दूसरा था। अपनी पत्नी के देहांत के पश्चात् उन्होंने दूसरा विवाह न करने का निश्चय कर लिया था। किंतु घरवालों के कहने पर, और जीवन को सुखी बनाने के उद्देश्य से, उन्हे दूसरा विवाह करना ही पड़ा।

सुभद्रा से विवाह हुए अभी छ मास ही बीते होंगे। इस बीच में वह सुभद्रा से जी खोलकर बाते भी न कर सके थे। घर पर, सप्ताह में एक-दो दिन छोड़कर, रहते ही कहाँ थे?

भोजन इत्यादि करने पर सिद्धेश्वर अपनी कोठरी में चले गये।

पानी बरस रहा था। गाँव मे उन्हीं का मकान दोमंजिला था। उसमें शहर के ढंग के कमरे, खिड़कियाँ और अलमारियाँ बनी थीं। यह सब उनके पिता के पुरुषार्थ का फल था। कुछ जमींदारी भी थी। छोटे भाई महेश्वर घर ही का काम-काज सँभालते थे। कारण, वह विशेष पढ़े-लिखे न थे।

सिद्धेश्वर अपने साथ अँगरेजी का एक अखबार लाए थे। उसे पढ़ने लगे। सुभद्रा घर के कामों से निवृत्त होकर आई। सिद्धेश्वर ने अखबार से दृष्टि हटाकर देखा—सुभद्रा चुपचाप खड़ी थी। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—आओ, बैठ जाओ!

क्या पढ़ रहे हैं?

अखबार।

मुझे भी पढ़ना सिखला दीजिये।

पढ़कर क्या करोगी?

आपके पास चिट्ठी लिखा करूँगी।

वह बैठ गई। सिद्धेश्वर ने खिड़की से देखा—बादलों मे छिपी हुई चाँदनी सुबह की सफेदी-सी जान पड़ती थी; किंतु रात अभी दो ही घड़ी बीती थी। लैम्प के प्रकाश में सुभद्रा के पतले ओठों पर पान की लाली साफ दिखाई देती थी।

दोनों एक दूसरे को देखने लगे—सुभद्रा ने कहा, आप सबको एक साथ ही क्यों नहीं रखते? यहाँ गाँव मे मन नहीं लगता।

शहर का खर्च बहुत है। वहाँ सबको कैसे ले चलूँ? और फिर, मा को वहाँ आराम भी न मिलेगा। गाँव के लोगों को शहर नहीं पसद है, और शहर के लोगों को ग्राम्य-जीवन नहीं अच्छा लगता।

तो आप मुझे ही अपने साथ रखें।

यह कैसे हो सकता है? मैं जानता हूँ कि तुम शहर के वायुमंडल

मे पत्नी हो। किंतु क्या किया जा सकता है; घर में सबको बुरा लगेगा।

सुभद्रा चुप हो गई। सिद्धेश्वर ने फिर कहा—मैंने अपने जीवन को सुखी बनाने के उद्देश्य से तुम्हारे साथ विवाह किया था, किंतु अब देखता हूँ कि वह मेरा भ्रम था। वास्तव में मैंने तुम्हारे सुख को मिट्टी में मिला दिया।

आप ऐसा क्यों कहते हैं?

और क्या सुभद्रे! मैं तुम्हे पूर्ण रूप से प्रसन्न नहीं रख सकता। जब तुम्हे ध्यान से देखता हूँ, तो अपने जीवन की बहुत-सी घटनाओं का स्मरण हो आता है।

सुभद्रा ने फिर कुछ न कहा। उसने अपने जीवन के परिवर्तन पर एक दृष्टि डाली। बाल्य-जीवन अत्यन्त मनोरम प्रतीत हुआ। घर पर मा उसे एक भी काम न करने देती थी। किन्तु विवाह होने पर पूर्ण गृहस्थी का भार उसे सँभालना पड़ रहा था; क्योंकि छोटी बहू प्रायः बीमार ही रहतीं।

सुभद्रा ने सोचा कि उसका सुख स्वप्न-सम्पत्ति की तरह लुप्त हो गया। विवाह के पूर्व उसने अपने भविष्य की—अपने पति के सम्बन्ध की—अनेक कल्पनाएँ की थीं; किंतु आज उनमे से एक भी प्रत्यक्ष दिखलाई नहीं देती। उसने पति का जो काल्पनिक चित्र अपने अंतरपट पर अंकित किया था, वास्तव में सिद्धेश्वर वैसे नहीं थे। उसे चाहिये था—प्रेम का कोई उन्मत्त भ्रमर, तभी वह अपनी प्रेम-तृष्णा को बुझा सकती थी। फिर भी, सिद्धेश्वर को पाकर ही, वह अपने को संतुष्ट रखने की चेष्टा करती थी।

उसने धीमे स्वर में पूछा—पैर दबा दूँ?

सिद्धेश्वर ने कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा।

वह पैर दबाने लगी। रात अधिक हो गई थी। कुछ देर में लोग स्वप्नों के देश मे भ्रमण करने लगे। रजनी निशाकर से किलोल करने लगी—प्रकृति शात होकर देखने लगी!

२

दिन दुखदायी होने लगे।

वर्षा-ऋतु में, मार्ग की असुविधा के कारण, सिद्धेश्वर प्रायः घर न आते। सुभद्रा दिन-रात घर के काम-काज मे काट देती थी। गॉव में बीमारी फैली थी। सिद्धेश्वर की माँ भी बीमार पड़ी। समाचार सुनकर सिद्धेश्वर को आना पड़ा। दैवयोग से उनपर भी बीमारी ने आक्रमण किया। माँ की अवस्था सुधर गई; उनकी बीमारी बढ़ने लगी। वह स्वयं अपने जीवन से निराश हो गये। गॉव में रोज.. दो-चार मौतें हो रही थीं।

रात्रि का समय था। सुभद्रा दवा दे रही थी। उनकी आँखें बन्द थीं। सुभद्रा ने जगाया। उन्होंने अधखुली आँखों से देखा, ध्यान से देखते रहे। सुभद्रा ने दवा के गिलास की ओर सकेत किया। उन्होंने धीमे स्वर से कहा—मैं अब न बचूगा; मुझे विश्वास है—आज मेरा अन्तिम दिवस है सुभद्रा!

सुभद्रा की आँखे बरसने लगीं। उसने धैर्य देते हुए कहा—आप ऐसा न सोचे, बहुत जल्द अच्छे हो जायँगे।

नहीं सुभद्रा, मुझे अपने कथन पर विश्वास है। उस जन्म में जो किया था, उसका फल भोग रहा हूँ—जीवन भर अशान्ति में था। अब इस जन्म के कर्म को लेकर जा रहा हूँ। मेरे बाद मेरा मान बचाना। और तुमसे क्या कहूँ! मेरे कारण तुम्हारा जीवन नष्ट हो गया। ईश्वर तुम्हे शान्ति दें।

इतना कहकर उन्होंने सदा के लिए आँखें बन्द कर लीं!

अभी रात का ही समय था। सन्नाटा शासन कर रहा था। मृतक की क्रिया बाकी थी। गाँव में हाहाकार मच रहा था। भयानक दृश्य था।

ऐसे समय मे सिद्धेश्वर का शव लेकर श्मशान जाना बडे साहस का काम था। किसीकी हिम्मत न होती। कई बार बुलाने पर भी कोई न आया। अत में महेश्वर कुछ लोगों को बुला लाये। शव लेकर चले। नदी-तट पर देहाती श्मशान था। एक तो बरसात की गीली लकड़ी, दूसरे—मेघों की निरन्तर झडी, तीसरे— हैजे के प्रकोप से श्मशान की भयकरता ! चिता में नाम मात्र को आग लगाकर लोग चले आये !

स्त्रियों के साथ सुभद्रा भी उसी समय नदी तक स्नान करने गई। उसकी आँखे मेघों से होड़ लगाये हुई थीं। बिजली तड़पती थी आकाश मे और गिरती थी उसके हृदय पर। उसने बिजली कौधने पर एक बार देखा—मुर्दों को कुत्ते और सियार घसीट रहे हैं ! वह सिहर उठी। उसका सारा शरीर थर-थर काँपने लगा।

रिमझिम बूँदों के साथ हवा छेडखानियाँ कर रही थी। एकाएक सिद्धेश्वर की नई चिता अन्तिम बार धधककर बुझ गई। सुभद्रा उस प्रकाश को देखकर चौंक पडी और चीख मारकर रो उठी। अरे अभी तो सारा जीवन रोने को पडा था !

न जाने कौन, नदी के उस पार कुछ दूरी पर, गा रहा था—ऊधो ! मन की मन ही माँहि रही !

३

समय की गोद मे कई मास खेल गये।

सुभद्रा जैसे दूसरे संसार में चली आई हो। वह बड़े कौतूहल से अपने जीवन के परिवर्त्तन को देख रही थी। न उसके हाथों में चूड़ी, न

मस्तक में रोली, न अधरों में ताम्बूल-राग ! पर सचमुच यह सब कुछ न होने पर भी उसकी जवानी फट पड़ती थी, सौन्दर्य उमड़ा आ रहा था !

सुभद्रा ने देखा, घर के लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं—उसके प्रति किसी की सहानुभूति नही । पड़ोस की स्त्रियाँ कहतीं—जब से आई, घर का नाश हो गया । गाँव के लोग कहते—रूपवती युवती विधवा शत्रु-रूप है !

विचित्र परिस्थिति थी ! एक वृद्धा ने प्रस्ताव किया कि सुभद्रा के केश कटा देने चाहिये । यह सब सुन-सुनकर बेचारी सुभद्रा बार-बार अपने जीवन को धिक्कारती। सोचती—पूर्व जन्म का कर्मफल भोग रही हूँ।

दिन किसी तरह बीतते रहे ।

नित्य नवीन कष्ट आने-जाने लगे । घर में कलह भी बढ़ती ही गई । वह एकान्त में बैठकर अश्रुपात करती । जब बीती बातों पर ध्यान जाता, तो हृदय की धड़कन बढने लगती । अंत मे विचार-शून्य होकर मरने के लिये तैयार हो जाती; किन्तु तत्काल ही अपने को सँभालकर सचेत हो जाती ।

संसार परिवर्तन से खेल रहा था ।

अभागी हिंदू-अबला—सुभद्रा—अपने भविष्य पर विचार कर रही है । चंद्रमा को देखती है, देखकर फिर देखती है ! जी नहीं भरता । उसने हँस दिया । जीवन भी हँस पड़ा । संतोष की किरणे आकाश पर बिखर गई ।

रजनी की निस्तब्धता क्षितिज से किसी को अपनी ओर खींच रही थी । तारे टूट रहे थे । वह खिड़की पर थी । कोई भूली बात याद आ गई, सोचने लगी । तब तक कानों में एक हल्की गूँज दौड़ गई । ध्यान से सुना, कोई अलाप ले रहा है ! धीरे-धीरे स्पष्ट होकर वह स्वर सुनाई दिया—'यह ऋतु रूठ रहन की नाहीं !'

गायक की ओर ध्यान जाता है। मन-ही मन विचार करती है—चद्रधर बड़ा विचित्र जीव है। सदैव मलार ही गाता है, जीवन के भयङ्कर दिनों मे भी मलार ही ! न जाने इसके हृदय में किस आनद-वीणा के तार बजते रहते हैं !

सुभद्रा, चिक की तीलियाँ तोडकर—उसी में से, कई बार चद्रधर की मस्ती के ढङ्ग देख चुकी थी। वह सामने के चबूतरे पर बैठकर भङ्ग घोंटता था; फक्कड़ था ही, रुपये-पैसे की परवा न थी। तो भी सदैव प्रसन्न रहता। अपने रग में मस्त इधर-उधर इठलाता फिरता। बरसाती सध्या की गहरी लाल किरणों को बादलों पर घूमते हुए खूब देखता। रजनी जब निशाकर से क्रीडा करती, तब हृदय खोलकर गाने लगता। गाते-गाते उन्मत्त हो जाता। आँखों से आँसू उमड़ने लगते। यही उसका वशीकरण था।

एक दिन, चिक उठी रह जाने के कारण, उसने सुभद्रा के अल्हड़ यौवन को खूब देखा। सुभद्रा अनमनी-सी होकर जैसे उसे अपने को दिखा रही थी—सहसा दृष्टि फेरकर देखा, आँखें चार हो गईं। फिर, क्षण-भर में ही गम्भीर बनकर आकाश की ओर देखने लगी। चन्द्रधर के हृदयाकाश में बिजली दौड गई।

श्रावण का सोमवार था—प्रदोष का व्रत। सुभद्रा पास ही के शिव-मन्दिर मे दर्शन करने गई। सध्या बीत रही थी। साथ में एक महरी थी। शिव-दर्शन करके उसने एक बार 'सर्चलाइट' वाली आँखों से देखा—चन्द्रधर पास ही के एक घने पेड़ के नीचे चुप खड़ा था। उसकी मस्ती मानों शिथिल-सी हो गई थी। वह किसी विचार-धारा में बेसुध बहा जा रहा था।

* * * *

इस बार गाँव में फिर बीमारी फैली; किन्तु अगले वर्ष की भाँति

नहीं। फिर भी कई आदमी मर चुके थे। महेश्वर अपनी स्त्री को लेकर ससुराल चले गये थे। अपने सास के साथ सुभद्रा ही घर में रह गई थी। अवसर मिलने से भावुकता बढ़ने लगी। जब गाँव-भर में हाहाकार हो रहा था, तब वह प्रेम की उपासना कर रही थी।

आज भोर से ही वह बड़ी बेचैन थी। रह-रहकर हृदय दलक उठता था। आधी रात को उसने देखा—सास सो रही थी। चुपचाप धीरे-धीरे, द्वार के पास आई। बार-बार रुककर धीरे से द्वार खोला; बड़े साहस से पैरों को चौखट के बाहर रखा। सीधे मंदिर तक पहुँच कर दूर पर खड़ी हो गई। किसी के कराहने की ध्वनि आ रही थी। वह भय से रोमाञ्चित हो उठी।

आहट पाकर चंद्रधर ने बड़े धीमे स्वर में कराहते हुए पूछा, कौन है ? वह बोली, मैं हूँ।

चद्रधर सोचने लगा। सुभद्रा उसका स्वर पहचान गई। पूछा—कैसी तबीयत है ?

अच्छी नहीं है। भला इस समय तुम यहाँ कहाँ ?

यों ही आ गई; अब जाती हूँ।

चद्रधर ने जैसे एक सपना देखा !

सुभद्रा आगे बढ़ कर एक पक्के कुएँ पर बैठ गई। एक साथ अनेक विचार-धाराएँ उसे बहा ले चलीं। उसने लम्बी साँस खींचकर एक बार आकाश की ओर देखा—चन्द्रदेव की शुभ्र कान्ति क्षीण हो गई थी। वह बार-बार यही सोचती—उन्होंने कहा था, 'मेरा मान बचाना' !

उसका हृदय असीम आकांक्षा के साथ उदासीनता की नींद से चौंक उठा। उसने हलकी साँस भरकर कहा—अवश्य मानूँगी !

हृदय ने घबराकर पूछा—फिर क्या उपाय है ?

उसने मन-ही मन कहा—अब मेरे लिये संसार में कहीं स्थान नहीं है। इस जीवन से छुटकारा पा जाने मे ही सुख है।

जैसे अपनी मनोवृत्तियों पर से उसका विश्वास उठ रहा था। छल-कता हुआ यौवन बार-बार उसका मुख जोहता था। उसने झुककर बडे साहस से कुएँ मे देखा। चारों तरफ सायँ-सायँ हो रहा था। लालसाएँ उसे पीछे ढकेलना चाहती थीं। किन्तु निराशा और ग्लानि उसे आगे ठेल रही थीं।

क्षणभर में सब साहस बटोरकर सहसा वह कूद पड़ी! जोरों से धमाके का शब्द हुआ। कोई उसे सुन न सका। स्वर्ग में बैठे सिद्धेश्वर भी न देख सके कि उनके अन्तिम शब्दों का उसने कहाँ तक पालन किया!

रजनी अपने आँचल से प्रकाश को छिपाए बैठी थी। चाँद को बादलों ने कारावास मे डाल दिया था। प्रभात की सफेदी बड़ी उत्सुकता से झाँक रही थी। पाँच बज चुके थे। चंद्रधर का ज्वर उतर गया था। उसे बडी प्यास लगी, किंतु पानी पिलानेवाला कोई न था। उसने छलछलाती आँखों से लोटा-डोरी की ओर देखा। फिर कुएँ से पानी लेने के लिए चल पड़ा।

कुएँ में रस्सी डालकर कई बार पानी निकालने का प्रयत्न किया; किंतु लोटे मे पानी भरता ही न था! उसने बड़े आश्चर्य से देखा—कुएँ मे एक शव पडा था।

हाथ से रस्सी छूट गई। रोंगटे खडे हो गए। आवाज दी, लोग जुट पड़े। शव निकाला गया। चद्रधर अभी तक प्यासा बैठा था। शव देखते ही उसकी आँखों के सामने अँधकार छा गया। वह थर-थराकर उठा और सँभलते-सँभलते प्यासा ही चला गया।

चिड़ियावाला

कोयल की बोली बोलो !

नहीं, पहले पपीहे की बोलो।

नहीं, नहीं, भुजंगेवाली

बालकों का एक झुंड चिड़ियावाले को घेरे था। उसका नाम कोई नहीं जानता था। जिस मार्ग से वह चला जाता, खेलते हुए बालक दौड़ पड़ते—चिड़ियावाला ! अरे चिड़ियावाला !! वह देखो, आ रहा है।

चिड़ियावाला हँस पड़ता, बालकगण उसके साथ हो लेते !

वह तरह-तरह की चिड़ियों की बोली, बड़ी खूबी के साथ, बोलता था। इसीलिये, उसका नाम था—चिड़ियावाला ! बूढ़े कहते—मैं अपनी जवानी से, स्त्रियाँ कहतीं—मैं अपने विवाह के पश्चात् से, इस चिड़िया-वाले को इसी तरह देखती हूँ। पड़ोस में कोलाहल मच जाता। सब उसके इस कौशल पर मुग्ध हो जाते।

उसकी गुदडी का चिथड़ा खींचते हुए नटखट बालक ने कहा—सब बोली तो बोल चुके! अब गदहे की बोली बोलो, बस, फिर न कहेंगे।

चाम के झोंपडे मे आग लगी है—बाबा ! वह कैसे बोलेगा ? मा जी से कुछ माँग लाओ, अब चलूँ।—कहते हुए चिड़ियावाला अपनी गुदड़ी समेटने लगा।

लड़के मार्ग रोककर खडे हो गये। एक ने कहा—अच्छा, भूत की सूरत दिखलाकर, तब—चले जाओ।

चिड़ियावाले ने अपने हाथों से आँखों की पलकें उलट लीं, रुई

की तरह सफेद बालों से मुँह ढक लिया और दाँत निकालते हुए भयानक आकृति बनाकर कहा—हो-आः।

लडके हँस उठे। खिड़की की चिक मे से पैसे बरस पडे। वह चलता बना।

यही उसका व्यवसाय था, और यही—उस महाश्मशान की भीषण ज्वाला को धधकाने के लिये—कमाई थी।

* * * *

नन्दन बाबू की जमीन पर वह झोंपडी बनाकर था। झोंपड़ी के सामने गेदा और गुलमेहदी समय-समय पर खिलती थी, जिसे देखकर वह प्रसन्न हो उठता था। उस पुराने पीपल के वृक्ष के नीचे उसकी झोंपड़ी थी, सन्ध्या-समय जिस पर सैकड़ों पक्षी अपना बसेरा लेते थे।

नन्दन-बाबू ने, अपने किसी लाभ की आशा से, उसे वहाँ से निकाल दिया था। उनका लड़का सुशील रोज उसे मन-ही-मन खोज लिया करता; मगर बाबूजी के डर से कुछ न कहता।

एक दिन घूमते-फिरते हुए चिड़ियावाला उसी झोपडी की जमीन को चुपचाप देख रहा था। सुशील ने आकर कहा—चिडिया की कोई बोली बोलो।

चिडियावाले ने एक बार उसकी ओर देखा, फिर जमीन की ओर देखते हुए चल पड़ा।

उस दिन से वह चिडियावाला फिर वहाँ न दिखाई दिया।

२

समय के नन्दन-वन मे कितने ही परिवर्त्तन हो गए।

उस दिन पक्षियों के मधुर कलरव से आकाश गूँज उठा। जाडे का गुलाबी प्रभात था। कुएँ के सामने बरगद का वृक्ष था, थके हुए मुसाफिर का वहीं विश्राम-गृह था। एक उजड़ी हुई झोंपड़ी थी। वहीं, थका-माँदा चिड़ियावाला अपनी गुदडी पर पड़ा था।

प्रकृति सन्नाटे का राग अलाप रही थी। एक भटका हुआ पक्षी, रात-भर बसेरा लेकर; उडा जा रहा था—बहुत दूर! अपने भूले हुए पथ को खोज रहा था।

बडी करुण आह थी। एक दर्द-भरी तान थी। किसी ने नहीं सुना। खून की एक उलटी हुई। कलेजा थामकर रह गया। किसीने नहीं देखा।

किरणें अपना जाल बना रही थीं। प्रलय का वह भीषण लाल खूनी अङ्गार अपने विराट् रूप की ओर सकेत कर रहा था। जीवन-कहानी एक पहेली बनकर स्वयं देख रही थी।

चित्रकार

चित्रकार बैठा था। कोई काम उसके हाथ मे न था। वह दानों के लिए तरसने की तैयारी कर रहा था; परन्तु कलावत था। जैसे उसे परवाह न थी।

उसकी चटाई पर चित्र-लेखन की सामग्री बिखरी थी। वह सोचता था—कोई तो आवेगा ही। एक सुदरी स्त्री आई। उसने पूछा—घनश्याम चित्रकार तुम्हारा ही नाम है?

हाँ—कहकर चित्रकार रस भरी मेघमाला को देखने लगा।

'क्या मेरा चित्र बना दोगे?'

'बन सकेगा?—मुझे तो आशा नहीं।'

'चेष्टा कर देखो परन्तु मैं बैठकर शबीहन लगवाऊँगी।'

'नहीं, उसकी तो कोई आवश्यकता नहीं परन्तु मैं ऐसा सुन्दर चित्र बना सकूँगा या नहीं। मुझे तो सन्देह है।

'तुम बना सकोगे'—कहकर सुन्दरी ने मुसकिरा दिया। एक पत्र दिया, कहा—'बनाकर इसी पते से ले आना।'

वह चली गई।

दरिद्र चित्रकार ने जिसके पास खाने को भी नहीं था, कुछ खर्च

के लिये नहीं माँगा। वह चुपचाप कल्पना से क्षितिज पर सुदरी का चित्र बनाने लगा।

* * * *

स्वर्णमयी ऊषा के आगमन के साथ ही चित्रकार अपनी शय्या छोड देता। वह एकान्त स्थान मे बैठकर प्रकृति के सौदर्य को देखता। सूर्य का उदय, पूर्व दिशा की लालिमा, हरे-हरे वृक्ष और पर्वतों की श्रेणियों को देखता तथा पक्षियों का गान सुनता।

वह ध्यान में लीन रहता। सूर्य आकाश में ऊपर चढ जाता, सूर्य का प्रकाश उसके ऊपर पडता, वह सहन न कर सकता, उसका ध्यान टूट जाता। वह अपनी कुटिया में आकर कुछ बनाने लगता। कभी-कभी वसत का पवन उसकी कुटिया मे सूखी पत्तियाँ लाकर फेक जाता, वह उन्हे उठाकर देखने लगता, फिर चित्र बनाने लगता है। कभी-कभी वह गुनगुनाने लगता। विकल होकर कभी कुटिया के बाहर आकर आकाश की तरफ देखता, और कुछ सोचने लगता। अपने विचार से जब उसका ध्यान हटता तब वह देखता, भगवान् भास्कर आकाश से बिदा हो रहे हैं, उनकी अतिम किरणों की आभा आकाश में सफेद-सफेद बादलों के पखों पर सुनहली चित्रकारी कर रही है—आकाश का रङ्ग कभी नीला हो जाता, कभी लाल, और कभी सब रङ्ग एक ही रूप मे दिखलाई देते।

वह बैठ जाता। चुपचाप प्रकृति की लीला देखता जाता। गोधूली का पहला तारा उसे दिखलाई देता; वह कहता—यह भी अपूर्व लीला है—सब तारे एक साथ क्यों नहीं निकलते?—वह बडे ध्यान से देखता—मानों तारा कह रहा हो—मेरा भी चित्र बना सकोगे?

जो कुछ वह देखता, मानों सब कहते—हमारा भी चित्र बना दो!—किन्तु चित्रकार कहता—नहीं, तुम्हे देखने से मेरे हृदय में

कुछ शांति अवश्य मिलती है; पर तुम्हारा चित्र बनाकर मैं अपने हृदय में शान्ति का राज्य स्थापित न कर सकूँगा। मेरे अंतः पटल पर अतीत का जो दृश्य अंकित है—जिसके लिये मैं रुदन करता हूँ, विलाप करता हूँ—उसीका चित्र बनाऊँगा। तुम्हे तो सभी प्रत्यक्ष देखते हैं; पर मेरे अतीत को कौन देख रहा है? मैं चित्रों द्वारा उसे दिखाऊँगा।

* * * *

दिन-पर-दिन बीतने लगे! चित्रकार केवल चित्रकार ही न था, वह कुशल कवि भी था। कभी-कभी वायु के साथ वह गान भी करता।

चित्रकार का न कोई मित्र था, न साथी, उस निर्जन स्थान मे वह एकांत-वास करता था। संसार के मायाजाल से वह अलग था। वह पुस्तकें पढता, चित्र बनाता और विचार करता। इतने ही मे उसका सारा समय बीत जाता। इसीमे उसे शांति मिलती।

उसके पास एक अमूल्य वस्तु थी, वही उसकी संपत्ति थी। उसे वह बड़ी सावधानी से रखता था। वह था—उसका प्रेम-पत्र! कभी-कभी रजनी मे वह दीपक के प्रकाश में उसे पढ़ता था। पढकर रोता, फिर हृदय से लगा लेता।

* * * *

बहुत दिनों के बाद—

चित्रकार का चित्र बन चुका था। शीतल मलय पवन के एक झोंके ने कुटिया का द्वार खोल दिया। उसकी दृष्टि चारो तरफ दौडने लगी। उसने देखा, आकाश के मध्य में सूर्यदेव आ गए है। अब उसके मुख पर शाति और सन्तोष था, वह विकलता नहीं थी। करुणा ने अब ज्ञान का रूप धारण कर लिया था। वह चुपचाप बैठा था। चित्र तैयार था।

द्वार पर कुछ शब्द हुआ। चित्रकार आश्चर्य से उस तरफ देखने लगा। किसीने पूछा—क्या मुझे पहचानते हो?

चित्रकार ने कहा—न .. हाँ ..।

क्या वे दिन भूल गए ?

कुछ कुछ।

क्या रोने के दिन बीत गए ?

हाँ।

अब देखने से मालूम पड़ता है, तुम एकदम बदल गए !

चित्रकार ने बडे मधुर शब्दों मे कहा—जो पहले ग्लानि और चिता थी, वही अब शान्ति के रूप में हृदय मे-वास करती है। जो प्रेम था, वह ज्ञान के रूप में परिणत हो गया है।

दोनों एक दूसरे को देख रहे थे।

चित्रकार ने फिर कहा—एक बोझ अभी तक हृदय पर है, आज वह भी दूर हो जायगा।

इतना कहते हुए उसने वह चित्र और पत्र निकाला। वह एक बार चित्र की तरफ देखता, और एक बार उसकी तरफ। दोनों चुपचाप खडे थे। चित्रकार ने पहले उसे पत्र दिया। उसने उसे देखकर कहा—यह तो मेरा ही लिखा हुआ है ?

चित्रकार ने हाँ कहते हुए उसके हाथ में चित्र दे दिया। तब उसने कहा—यह तो मेरा ही चित्र मालूम पड़ता है ?

चित्रकार बडे ध्यान से उसकी तरफ देखने लगा। उसने कहा—हाँ। इसे बनाकर ही मुझे शान्ति मिली है। और, अब अन्तिम मिलन है। मैं जाता हूँ।

इतना कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही चित्रकार देखते-ही-देखते न जाने कहाँ चला गया।

— —

रहस्य

मैंने कहा—प्रिये !

उसने कहा—प्राण !

मैंने कहा—मनुष्य सम्पूर्ण विश्व को हथेली में रख कर मसल देने की कामना रखते हुए भी, मृत्यु से पराजित हो जाता है। भयभीत हो उठता है। सभी जानते हैं कि एक-न-एक दिन उसके शिकजे में जकड़ कर कहीं जाना होगा। कहाँ जाना होगा, यह कोई नहीं बता सकता !

उसने कहा—सृष्टि के सुकुमार खिलौने जब हँसते, बोलते चल बसते हैं तब कैसा अनहोना-सा मालूम पड़ता है। प्रकृति एकाग्र होकर देखने लगती है। सब सूनसान। कहीं कुछ नहीं। यह ससार स्वप्न-चित्रों का अलबम ! .

मैंने कहा—मेरा भी अन्त होगा और एक दिन ऐसे ही, पता नहीं कैसे मौन होकर मैं पलकें बन्द कर लूँगा।

उसने कहा—मृत्यु की सत्यता की पुकार के साथ भगवान् के नाम की सत्यता बड़ी करुण मालूम पड़ती है।

मैंने कहा—जीवन में इतनी ममता क्यों ? प्रतिक्षण इसे मिटाने के लिये बैठा हुआ "मैं" इतना विचलित क्यों होता हूँ कुछ समझ में नहीं आता।

उसने कहा—समझ कर क्या होगा ? दो घड़ी के इस क्षणभगुर जीवन का जो होना होगा सो होगा, व्यर्थ इसकी चिन्ता क्यों ?

मैंने कहा—बड़ी विचित्र समस्या है।

उसने कहा—हटाओ, इन बातों को, जरा हँसो तो। सब समस्या हल हो जायगी।

मैंने कहा—कैसे ?

वह खिलखिला पड़ी।

मैं भी अपनी हँसी रोक न सका ..!

सम्मतियाँ

आज—श्री विनोदशङ्कर व्यास हिन्दी के प्रसिद्ध कहानी-लेखक हैं। सीधी-सादी सरस भाषा में भाव प्रधान कहानियाँ लिख कर सिद्धहस्त लेखक ने अपना कल्पना-कौशल प्रदर्शित करने में बड़ी सफलता पाई है।

भारत—पं० विनोदशङ्कर व्यास अपनी भावपूर्ण, मार्मिक एवं मौलिक कहानियों के लिए प्रसिद्ध हैं।

कर्मवीर - पं० विनोदशङ्कर व्यास उस स्कूल के यशस्वी लेखक हैं, जो घटनाओं की अपेक्षा भावों को अधिक मान देता है।

विश्वमित्र—व्यास जी हिन्दी के एक अच्छे कहानी लेखक माने जाते हैं।

संघर्ष—पं० विनोदशङ्कर व्यास हिन्दी माने हुए लघु-कथा लेखक हैं।

स्वदेश—व्यास जी अपनी छोटी कहानियों के लिए प्रसिद्ध हैं।

देश—पं० विनोदशङ्कर व्यास हिन्दी के कीर्तिशाली कहानी लेखक हैं।

श्री प्रेमचन्द जी—आपकी भाषा में चोट होती है और चित्र कुछ ऐसे Elusive होते हैं मानो स्वप्नचित्र हैं और इसी लिए उनमें रोमानी झलक होती है।

पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक—व्यास जी छोटी छोटी कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त हैं।

श्री जी० पी० श्रीवास्तव—श्री व्यास जी एक जबरदस्त कहानी लेखक हैं। उनकी लेखनी में सजीवता और निर्भयता का पूरा आभास रहता है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त—.......लेखनी में मुझे गति भालूम पड़ती है। स्वच्छन्दतापूर्वक होते लेकर जब वह अपनी ताल पर आकर अचानक रुकती है, तब भी मानों अपने आवेश के कारण वह चंचल रहती है। मेरा स्वरालाप में भी एक गूंज बन जाती है। मैंने आपकी रचना से आनन्द प्राप्त किया है, इसीलिए उसका अभिनन्दन करता हूँ।